अमृतवाणी

लेखक एवं प्रकाशक

धर्मपाल कपूर

बी०ए० ऑनर्स, एम०ए०

कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

संस्करण : 2013
प्रतियाँ : 1000

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

टंकण एवं साजसज्जा : **अभिनव इंटरप्राइजिज, मो. 94683 40497**
मुद्रक : **यू०आर०बी० प्रिंटिंग प्रैस, शैड नं. 2, रतपुर कॉलोनी, पिंजौर, मो. 9466111730, 9466112730**

भूमिका

पहली नमस्ते परमपिता को, जिन्होंने जगत् रचाया है।
दूसरी नमस्ते मातपिता को, जिन्होंने गोद खिलाया है।।
तीसरी नमस्ते विद्वानों को, जिन्होंने ज्ञान सिखाया है।
चौथी नमस्ते धरती माँ को, जिसने सबको सम्भाला है।।
पाँचवी नमस्ते आप सभी को, जिन का दर्शन पाया है।

मेरी प्रिय आत्माओ! आगे निवेदन यह है कि बचपन से लेकर अब तक जिन–जिन आर्यसमाजों के विभिन्न विद्वानों एवं अन्य सम्प्रदायों के विभिन्न विद्वानों के मैंने प्रवचन सुने हैं। इसके अतिरिक्त अब तक जो मैंने प्रवचन किये हैं और जो मेरे लेख विभिन्न पत्रिकाओं में छपे हैं। उनका सार मैं इस पुस्तक में प्रस्तुत कर रहा हूँ। हम देखते हैं कि आज के पाठकों व विद्यार्थियों की रूचि हमारे धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन के प्रति कम हो रही है। अतः मैंने इस पुस्तक में विशेषतः वेद, उपनिषद्, रामायण, गीता एवं सत्यार्थप्रकाश आदि धार्मिक ग्रंथों का सार प्रश्नोत्तर के रूप में अत्यंत सरल एवं सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया है ताकि स्वाध्यायशील व्यक्ति एवं विशेषतः विद्यार्थी इन का अध्ययन करके लाभ उठा सकें। उनमें से मुख्य प्रवचनों एवं लेखों का एक खूबसूरत गुलदस्ता आपकी सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूँ। लीजिए, अब आप भी इस रूहानी गुलदस्ते रूपी अमृतवाणी के फूलों को सूंघिए और झूम–झूम कर आनंदविभोर हो जाइए। पढ़ो, समझो और करो।

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में मुझे सर्वश्री नरेन्द्र आहूजा ''विवेक'' जी, डॉ. रमेश चन्द्र बावा जी, रोशन लाल अग्रवाल जी, सत्यपाल मोदी जी, सरदारी लाल धवन 'कमल' जी, ओम प्रकाश सैनी जी, अशोक आर्य जी आदि ने सहयोग प्रदान किया है। अतः इन मित्रों का स्तवन न करना मेरी कृतघ्नता होगी। नरेन्द्र आहूजा ''विवेक'' जी ने इस पुस्तक के सम्पादन में विशेष

योगदान दिया है। मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि उनके सहयोग के बिना प्रस्तुत पुस्तक का वर्तमान रूप में संयोजन न हो पाता। जिस अचिन्त्य प्रभु की असीम अनुकम्पा से मैं अपने संकल्प को मूर्तरूप दे सका उसका कोटि–कोटि धन्यवाद करता हूँ। मैंने प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में पूर्ण सावधानी बरती है। परन्तु संसार का प्रत्येक व्यक्ति अल्पज्ञ एवं अल्पशक्तिमान है। अतः कोई भी त्रुटि रह गई हो तो पाठकगण से क्षमा चाहूँगा।

धर्म पाल कपूर

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला–134112 (हरियाणा)
फोन : 0172–2567845
मोबाइल : 0–9356301618

प्रस्तावना

स्वनामधन्य आर्य लेखक, अनुभव सिद्ध धर्मपाल कपूर द्वारा रचित आर्य सिद्धान्तों पर आधारित पुस्तक ''अमृतवाणी'' में संकलित समस्त विचार आर्य सिद्धान्तों, मान्यताओं पर आधारित तथा आम आदमी के लिए अत्यंत उपयोगी हैं। मनुष्य के दैनिक जीवन में उपयोग होने वाली छोटी–छोटी बातों का संकलन सरल शब्दों में लेखक ने किया है। लेखक ने मधुमक्खी की भाँति अनेकों ग्रंथों के स्वाध्याय से विचारों के पराग चुनकर उन्हें इकट्ठा करके शहद की भाँति इस पुस्तक का सृजन किया है। इसके लिए लेखक निश्चय ही बधाई के पात्र हैं। लेखक ने फूलों की भाँति चुनकर जनउपयोगी विषयों को वैदिक आर्य मान्यताओं कबीर, नानक आदि संतों की वाणियों तथा महापुरुषों की जीवनियों से उदाहरण देते हुए इस 'अमृतवाणी' रूपी सुन्दर माला में पिरोया है।

''अमृतवाणी'' सुखी जीवन, प्रार्थना, कर्म, धर्म, भक्ति, सत्संग, स्वाध्याय, संस्कार, वैराग्य, अभिमान आदि दैनिक जीवन के लिए उपयोगी विषयों द्वारा लेखक ने समाज में फैले अंधविश्वासों, पाखंडों, कुरीतियों पर तो करारी चोट की है साथ ही सत्य वैदिक आर्य सिद्धान्तों को भी स्थापित किया है। इस पुस्तक की भाषा शैली अत्यंत सरल, ग्राह्य एवं रोचक है। लेखक ने अपने गहन स्वाध्याय से ज्ञान के समुद्र में गहरे गोता लगाकर विचारों के अनुपम मोती बड़ी सहजता से इस पुस्तक अमृतवाणी के लेखों में संजोये है। गूढ़ विषयों पर स्पष्ट चिंतन और सरल, रोचक भाषा में उनका प्रस्तुतिकरण इस पुस्तक की विशेषता है।

इसके अतिरिक्त वेद–प्रश्नोत्तरी, उपनिषद्–प्रश्नोत्तरी, रामायण–प्रश्नोत्तरी, गीता–प्रश्नोत्तरी एवं सत्यार्थप्रकाश प्रश्नोत्तरी के माध्यम से इन महान् ग्रंथों के बारे में रोचक जानकारी दी है। यह प्रश्नोत्तरी इन ग्रंथों के स्वाध्याय की प्रेरणा आम पाठकों विशेष कर बच्चों को देती है। विभिन्न ग्रंथों पर यह प्रश्नोत्तरी न केवल इन ग्रंथों के प्रति आम पाठक की उत्कंठा जागृत कर स्वाध्याय की प्रेरणा देती है अपितु कई भ्रांतियों का भी निवारण करते हुए उपयोगी जानकारी भी देती है।

इस पुस्तक के अंत में लेखक ने विभिन्न धार्मिक, सामाजिक आर्यजनों के समय सुनाये जाने वाले बहुप्रचलित भजन आदि की संकलित किये हैं जो इस पुस्तक की उपयोगिता को और अधिक बढ़ा देते हैं। कुल मिला कर आर्य लेखक धर्मपाल कपूर द्वारा रचित पुस्तक ''अमृतवाणी'' एक उपयोगी संग्रहणीय स्वाध्याय योग्य रोचक पुस्तक है। आशा है कि इसके स्वाध्याय से समाज में फैले पाखंडों, अंधविश्वासों, कुरीतियों का निवारण होगा और यह सत्य सनातन वैदिक आर्य मान्यताओं के प्रचार–प्रसार में सहायक सिद्ध होगी।

अन्त में परमपिता परमेश्वर से स्वनाम धन्य अनुभव वृद्ध आर्य लेखक धर्म पाल कपूर के लम्बे निरोगी स्वस्थ एवं स्वाध्यायशील जीवन की कामना, प्रार्थना इस आशा के साथ भी उनकी लेखनी इसी प्रकार निरन्तर चलती रहे और वह इस माध्यम से समाज सेवा करते रहें।

दिनांक 24–02–2013

शुभेच्छु
नरेन्द्र आहूजा ''विवेक''
502, जी.एच.–27,
सैक्टर 20, पंचकूला
0172.4001895, 09467608686

विशेष सूचना

1. स्वाध्याय, मनन और आत्मसात्।
2. पाठकगण पुस्तक पढ़ने के पश्चात् किसी भी स्वाध्यायशील मित्र को इसे देने की कृपा करें।
3. कोई भी जिज्ञासु अपनी इच्छानुसार इसकी प्रतियाँ फोटोस्टेट करवा कर स्वाध्यायशील मित्रों में प्रचार–प्रसार के लिये बाँट सकता है।
4. पुस्तक केवल प्रचारार्थ लिखी गई है और इसका कोई मूल्य नहीं है।
5. सर्वाधिकार लेखकाधीन।

तिथि : 26–2–2013

लेखक
धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला–134112 (हरियाणा)
फोन : 0172–2567845
मोबाइल : 0–9356301618

विषयसूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
1.	अमृतवाणी	1
2.	सुखीजीवन	15
3.	प्रार्थना	22
4.	कर्म	27
5.	धर्म	34
6.	भक्ति	38
7.	सत्संग	42
8.	गुण ग्राही बनना	46
9.	तनाव दूर करने के मुख्य उपाय	48
10.	मृत्यु के बाद क्या–क्या साथ जाता है?	53
11.	स्वास्थ्य	57
12.	संस्कार	59
13.	वैराग्य	61
14.	अभिमान	63
15.	वेद–प्रश्नोत्तरी	65
16.	उपनिषद्–प्रश्नोत्तरी	77
17.	रामायण–प्रश्नोत्तरी	85
18.	गीता–प्रश्नोत्तरी	104
19.	सत्यार्थप्रकाश–प्रश्नोत्तरी	115

1. अमृतवाणी

अच्छी बात अच्छी न लगे तो बुरा समय है।
अच्छी बात अच्छी लगे तो प्रभुकृपा है।।
अच्छी बात अच्छी तो लगे परन्तु आप उसे जीवन में न उतारें तो आप प्रभुकृपा को ठुकरा रहे हो।

इच्छाएं मन की होती हैं जो सदा बढ़ती रहती हैं। ये कभी पूरी नहीं होती जब कि आवश्यकताएं शरीर की होती हैं जो सीमित होती हैं और पूरी हो जाती हैं। इच्छा नैतिक होती है और ऐषणा अनैतिक होती है। इच्छाएं बढ़ाओगे तो होंगे बेहाल और इच्छाएं घटाओगे तो बनोगे खुशहाल।

खाया हुआ भोजन अपना नहीं होता, परन्तु पचाया हुआ भोजन अपना होता है। इसी प्रकार कमाया हुआ धन अपना नहीं होता, अपितु परोपकार में लगाया हुआ धन अपना होता है। अतः व्यक्ति को अपनी रुचि एवं सामर्थ्य के अनुसार अपना धन परोपकार में लगाना चाहिए। जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों में :—

विनम्रता न हो तो विद्या व्यर्थ है।
उपयोग न हो तो धन व्यर्थ है।।
साहस न हो तो हथियार व्यर्थ है।
भूख न हो तो भोजन व्यर्थ है।।
श्रद्धा न हो तो यज्ञ व्यर्थ है।
होश न हो तो जोश व्यर्थ है।।
परोपकार न हो तो जीवन व्यर्थ है।

अंतःकरण के चार भाग होते हैं जिसे अंतःकरण चतुष्टय के नाम से पुकारा जाता है। (1) मन संकल्प—विकल्प करता है, (2) बुद्धि निर्णय करती है, (3) चित्त याद करता है, (4) अहंकार क्रिया करता है। मन की श्रद्धा से, बुद्धि की विश्वास से, चित्त की तप से, अहंकार की शुद्धि त्याग से होती है। इन सबका आधार ज्ञान, कर्म और उपासना है।

पदार्थ जीवन की आवश्यकताएं हैं इनको त्यागा नहीं जा सकता। परन्तु आवश्यकताएं लोभ न बने तभी शान्ति मिलेगी। लोभ–वासना धन मांगती है, अहंकार–वासना प्रभुत्ता मांगती है। काम–वासना रूप मांगती है और वासना उसको देखती है जो हमारे पास नहीं है। अतः वासना प्रतिदिन बड़ी होती जाती है और हम प्रतिदिन छोटे होते जाते हैं। अतः कुछ भी पाकर हृदय की तरंगें शांत नहीं होती क्योंकि हृदय तो प्रभुमिलन के लिए बना है। अतः व्यक्ति के लिए निम्नलिखित पाँच कार्य आवश्यक हैं।

1. ओ३म् का ध्यान, 2. वेद का ज्ञान, 3. यज्ञ का अनुष्ठान, 4. संस्कारी संतान, 5. राष्ट्र के लिए बलिदान।

1. संसार में सब से बड़ा अधिकार सेवा और त्याग से प्राप्त होता है।
2. अपनी विद्वता पर गर्व करना सबसे बड़ा अज्ञान है।
3. वही उन्नति कर सकता है जो स्वयं को उपदेश देता है।
4. उन्नति चाहने वालों को निम्नलिखित छः अवगुणों का त्याग कर देना चाहिए। नींद, अहंकार, डर, क्रोध, आलस्य, कार्य में देरी करने की आदत।
5. चार चीजें मनुष्य को बड़े भाग्य से मिलती हैं :–
   (1) परमात्मा को याद रखने की लगन।
   (2) संतों की संगति।
   (3) चरित्र की निर्मलता।
   (4) उदारता।
6. चार चीजें जाकर फिर वापिस नहीं लौटती :–
   (1) मुँह से निकली बात।
   (2) कमान से निकला तीर।
   (3) आयु।
   (4) सम्मान।

7. चार बातों को सदा याद रखें :–

(1) दूसरों के द्वारा अपने ऊपर किया गया उपकार।

(2) अपने द्वारा दूसरों पर किये गये उपकार। की अपेक्षा।

(3) परमात्मा।

(4) मृत्यु।

8. अधिक आयु जीने की कला :–

(1) खाने को आधा करें।

(2) पानी को दो गुणा करें।

(3) व्यायाम को तीन गुणा करें।

(4) हँसने को चार गुणा करें।

9. चार बातें बहुत कठिन हैं–

(1) हाथी को धक्का मारना

(2) मच्छर की मालिश करना

(3) चींटी का चुम्बन लेना

(4) शादी के बाद मुस्कुराना

10. चार बातें जीवन से निकाल दो तभी सफलता मिलेगी–

(1) लोग क्या कहेंगे?

(2) यह काम मुझसे नहीं होगा

(3) अभी मेरा मूड़ नहीं है

(4) मेरी क़िस्मत ही खराब है

इन चारों बातों को कचरे के डिब्बे में फेंक कर कहिए हे प्रभु! जो भी कमी है, वह मेरी नादानी है शेष आपकी मेहरबानी है।

11. शक्तिशाली–

(1) चूहे से अधिक शक्ति बिल्ली में होती है

(2) बिल्ली से अधिक शक्ति कुत्ते में होती है

(3) कुत्ते से अधिक शक्ति शेर में होती है

(4) शेर से अधिक शक्ति हाथी में होती है परन्तु हाथी से भी अधिक शक्ति व्यक्ति की पाँचों अंगुलियों में होती है। यदि ये पाँचों अंगुलियाँ इकट्ठी हो जाएं तो यह मुट्ठी बन जाती है जो बड़ों–बड़ों की छुट्टी कर देती है।

12. (1) यदि आप एक घंटे की खुशी चाहते हो तो झपकी ले लो।

(2) यदि आप एक दिन की खुशी चाहते हो तो पिकनिक कर लो।

(3) यदि आप एक महीने की खुशी चाहते हो तो शादी कर लो।

(4) यदि आप एक साल की खुशी चाहते हो तो बिल्गेट और मुकेश अंबानी की तरह अमीर बन जाओ।

(5) यदि आप सदा के लिए खुशी चाहते हो तो रब की रजा में राजी रहो और संतोष रखो और कहो कि प्राप्त ही पर्याप्त है।

13. (1) एक बार गलती करे वह अज्ञान है।

(2) दूसरी बार गलती करे वह नदान है।

(3) तीसरी बार गलती करे वह शैतान है।

(4) चौथी बार गलती करे वह बेइमान है।

14. यह दुनियाँ गोल है। औरत चूहे से डरती है। चूहा बिल्ली से डरता है। बिल्ली कुत्ते से डरती है, कुत्ता शेर से डरता है। शेर आदमी से डरता है और आदमी औरत से डरता है।

15. घृणा को प्रेम से जीतो, क्रोध को क्षमा से जीतो, लोभ को संतोष से जीतो तथा काम के आत्मदर्शन से जीतो। पद, पदार्थ बंधन का कारण नहीं अपितु अंतःकरण में छिपी ममता ही बंधन का कारण है।

16. समाज का आधार परिवार है। आज परिवार खतरे में है। इन में सुधार की आवश्यकता है। गृहस्थी अपने बच्चों को सुख–सुविधाएँ तो देते हैं परन्तु संस्कार एवं समय नहीं देते हैं। बच्चों के सम्पूर्ण विकास के लिये सुख सुविधाओं के साथ–साथ संस्कार व समय भी आवश्यक है। गृहस्थाश्रम के तीन आधार स्तम्भ हैं–(1) सम्मान, (2) समर्पण एवं (3) सहयोग।

17. मन के चार भाग होते हैं। इनको टीम (Team) भी कहा जाता हैः–

(1) विचार (Thoughts)

(2) भावनाएँ (Emotions)

(3) वृति (Attitude)

(4) स्मृति (Memory)

सारे विचार मन में ही उत्पन्न होते हैं। मन ही संकल्प विकल्प करता है। जब वह किसी कार्य के करने के लिये निर्णय करता है तो वह बुद्धि कहलाती है। जब वह किसी वस्तु को याद करता है तो वह चित्त कहलाता है और इसी प्रकार जब मन कोई क्रिया करता है तो वह अहंकार कहलाता है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इन्हें अंतःकरण चतुष्ठय भी कहा जाता है। ये आत्मा की शक्तियाँ हैं। सुख–दुःख की अनुभूति भी मन ही करता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार मन की वृतियां हैं न कि आत्मा की।

मैं अब आपकी सेवा में स्वामी विवेकानंद जी के जीवन की एक घटना वर्णन करना चाहता हूँ। जब उनके के पिताजी की मृत्यु हो गई तो सारा परिवार विपत्ति में फंस गया। उन्होंने बी.ए. पास कर रखी थी। वे अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस जी के पास गये। उन्होंने स्वामी जी को मां काली के पास भेज दिया। वे धन की कामना करना भूल गये। वे मां काली से प्रार्थना करने लगे :–

माँ! विवेक दो, वैराग्य दो, ज्ञान दो, भक्ति दो। माता तुम्हारी कृपा से सदा ही तुम्हें देख सकूँ।

नरेन्द्र लौट आये, गुरु ने पूछा, क्या मांगा?तब कहीं उन्हें अपने पूर्व संकल्प की याद आयी। अरे! उन्होंने क्या किया। गुरु के आदेश पर वे फिर मंदिर में गये। दूसरी और तीसरी बार भी वे मुंह खोलकर मां के चरणों में सांसारिक सुख की प्रार्थना न कर सके।

इसी प्रकार जब स्वामी विवेकानंद जी 11.9.1893 दिन सोमवार प्रातः 10:00 बजे सर्वधर्म सम्मेलन में अमेरिका के शिकागो नगर में पहुँचे। डॉ. बैरोज ने उनका परिचय दिया। उनका चेहरा आवेश से धधक रहा था। उन्होंने अपने सामने बैठे उन श्रोताओं का सिहांवलोकन किया। लोगों की दृष्टि जैसे बंध गई। ऐसा सन्नाटा छाया जैसे आँधी आने वाली हो। सारा हाल निस्पंद था। सभी वक्ताओं ने प्रचलित प्रथा का अनुसरण करते हुये श्रोताओं को सम्बोधित किया था। परन्तु एक मात्र स्वामी विवेकानंद ऐसे वक्ता थे जिन्होंने सब औपचारिकताओं को भंग करके ''अमेरीका के बहनो और भाइयो'' से अपना सम्बोधन किया था।

यह सम्बोधन वक्ता के हृदय का भ्रातृभाव सभी श्रोताओं के हृदय में प्रविष्ट होकर झंकृत हो उठा। क्षणभर के लिए हज़ारों नर–नारियों के हृदय में सम्पूर्ण मानव जाति की एकता की अनुभूति साकार हो उठी क्योंकि इसमें विश्व–भ्रातृभाव का बीज, विश्व–मानवता की झंकार वैदिक ऋषि की वाणी सभी कुछ निहित था। अतः उनका यह सम्मेलन हॉल में जैसे विद्युत् की धारा के समान बह गया। सारा हॉल दो मिनट तक तालियों से गूंजता रहा। लोग अपने स्थान पर उठ खड़े हो गये। सुन्दर युवतियां मेजों पर चलती हुई स्वामी विवेकानंद जी की ओर बढ़ती हुई दिखाई दी। वे उन्हें ऐसे देखने लगी जैसे एक टक से चकोर चन्द्रमा को देखता है और उन्होंने कहा कि स्वामी विवेकानंद पृथ्वी पर देवता है। दोनों अध्यक्ष बॉनी व कार्डियल चकित होकर एक दूसरे की ओर देखते रह गये आखिर यह हुआ क्या है। कुछ समय के बाद तालियां कुछ धीमी पड़ी और स्वामी विवेकानंद जी ने इस प्रकार बोलना आरम्भ किया :–

जिस सौहार्द और स्नेह से आपने हम लोगों का स्वागत किया है, उससे मेरा हृदय अकथनीय आह्लाद से भर उठा है। गौतम जिसके एक सदस्य मात्र थे। संसार की उस प्राचीनतम ऋषि परंपरा

की ओर से मैं आप सबका धन्यवाद करता हूँ। जैन और बौद्धमत जिस की शाखाएं मात्र हैं, संसार के धर्मों की उस जननी की ओर से मैं आपके प्रति आभार प्रकट करता हूँ। .... और सारी जातियों और सम्प्रदायों के करोड़ों हिन्दुओं की ओर से मैं आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

मुझे उस धर्म से संबंधित होने का गौरव प्राप्त है जिसने संसार को सहिष्णुता का अनुभव और सर्वस्वीकृति का पाठ पढ़ाया। हम न केवल संसार में सबके प्रति सहिष्णुता में विश्वास करते हैं, वरन् सारे धर्मों को सत्य मानते हैं।

इसके उपरांत स्वामी विवेकानंद जी ने 27.1.1900 ई. को कैलिफोर्निया में प्रवचन करते हुए कहा था :–

हमें हिन्दुओं की आध्यात्मिकता, बौद्धों की करुणा, इसाइयों की कर्मठता तथा मुसलमानों का भाईचारा अपने व्यावहारिक जीवन में प्रदर्शित करना चाहिए।

मनु जी महाराज मनुस्मृति में लिखते हैं–

न हाय नैर्नं पलितैर न वित्तेन न बन्धुभिः।

ऋषयश्चचक्रिरे धर्मं योऽन्यानः स नो महान्।। 2.154

केवल आयु की अधिकता के कारण, श्वेत केशों से, धन की अधिकता से और बन्धुओं से कोई बड़ा नहीं बनता। ऋषियों ने इस विधान को बनाया हे कि जो विद्धान् है वही हम सब से बड़ा है।

संसार में विभिन्न प्रकार के लोग हैं। इस संसार में इतनी विभिन्नता और विषमता है कि किसी भी दो व्यक्तियों की आवाज़, चाल, उंगलियों के निशान, गुण, कर्म व स्वभाव आपस में नहीं मिलते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की हर बात निराली है। यदि दो व्यक्ति आपस में मिल जाते तो झगड़ा खड़ा हो जाता। कोई माता–पिता अपने पुत्र को, भाई–भाई को और मित्र–मित्र को न पहचान पाते। हमें पहचान के लिए आदमी नं. 1, 2, 3 आदि लगाने पड़ते। अतः काकभुशुण्डि को उपदेश देते हुये कहते हैं :–

एक पिता के बिपुल कुमारा।
होहिं पृथक गुन सील, अचारा।।
कोउ पंडित कोउ तापस, ग्याता।
कोउ धनवंत, सूर कोउ दाता।।

—रामचरितमानस (उत्तरकाण्ड) 86.1

एक पिता के बहुत से पुत्र पृथक्—पृथक् गुण, स्वभाव और आचार वाले होते हैं। कोई पण्डित होता है, कोई तपस्वी, कोई ज्ञानी, कोई धनी, कोई शूरवीर, कोई दानी। इसी प्रकार सरदारी लाल धवन 'कमल' भी लिखते हैं :—

बेजोड़ हर बशर है ख़ुदा की ख़ुदाई में।
गर मैं नहीं किसी सा तो मुझसा कोई नहीं।।

अतः दुनियाँ में जितने आदमी हैं उतनी ही प्रकार की किस्में हैं। परन्तु मुख्यतः संसार के विभिन्न व्यक्तियों को निम्नलिखित चार प्रकार की कोटि में बाँटा जा सकता है :—

1. पहली प्रकार के वे व्यक्ति हैं जिनके पास न तो भौतिक सम्पत्ति है और न ही आध्यात्मिक सम्पत्ति है।

2. दूसरी प्रकार के वे व्यक्ति हैं जिनके पास भौतिक सम्पत्ति तो है परन्तु आध्यात्मिक सम्पत्ति नहीं है। बहुसंख्या ऐसे व्यक्तियों की ही है।

3. तीसरी प्रकार के वे व्यक्ति हैं जिनके पास आध्यात्मिक सम्पत्ति तो है परन्तु भौतिक सम्पत्ति नहीं है।

4. चौथी प्रकार के ऐसे व्यक्ति भी हैं जिनके पास भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार की सम्पत्ति है। परन्तु ऐसे व्यक्तियों की संख्या बहुत कम हैं।

हम देखते हैं कि संसार के अधिकांश व्यक्ति अपना जीवन क, ख, ग और घ वर्णों में ही व्यतीत कर देते हैं। क का अर्थ है कमाना, ख का अर्थ है खाना, ग का अर्थ है गाना बजाना और घ का अर्थ घर बनाना। ये भी जीवन में जिन्दा रहने के लिए आवश्यक हैं। इनसे केवल शरीर का भौतिक विकास होता है। संसार में अधिकांश व्यक्ति दिन भर उचित व अनुचित ढंग से धन कमाते हैं और रात भर उचित व अनुचित ढंग से विषय—विकार करते हैं। जैसे

उर्दू शायर अकबर इलाहाबादी ने लिखा है—

हे हबीब ! क्या कार—ए—नुमायाँ कर गये।
बी.ए. हुए, नौकर हुए, पैंशन मिली और मर गये।।

संसार में बहुत ही कम लोग होते हैं जोकि शारीरिक विकास के साथ—साथ, आत्मिक एवं सामाजिक विकास भी करते हैं। अपने लिए ही नहीं अपितु दूसरे के लिए भी जीकर निष्काम कर्मयोगी बन जाते हैं। जैसे आदि शंकराचार्य, गुरु नानक, महर्षि दयानंद, स्वामी विवेकानंद आदि निष्काम कर्मयोगी एवं आदर्श पुरुष थे जोकि अपने यश के कारण आज भी जीवित हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संसार में किसी को कुछ, किसी को कुछ—कुछ और किसी को बहुत कुछ मिलता है। परन्तु किसी को भी आज तक सब कुछ नहीं मिला है। जैसे सोने के पास सौन्दर्य एवं मूल्य तो है परन्तु सुगन्ध नहीं है। हिमालय के पास गंगा एवं औषधियां तो हैं परन्तु सीढ़ियां नहीं हैं, आकाश के पास सूर्य और चन्द्रमा तो हैं परन्तु फूलों से भरा बाग़ नहीं है। यहाँ तक चक्रवर्ती सम्राट् को भी सब कुछ नहीं मिलता है। इसके विषय में निदा फ़ाज़ली कितना सुन्दर लिखते हैं :—

कभी किसी को मुकम्मल[1] जहाँ नहीं मिलता।
कही जमीं तो कहीं आसमां नहीं मिलता।।
जिसे भी देखिये वो अपने आप में गुम है।
जबां मिली है मगर हमजवां[2] नहीं मिलता।।
बुझा सका है भला कौन वक्त के शौले।
ये ऐसी आग है जिसमें धुआँ नहीं मिलता।।
तेरे जहाँ में ऐसा नहीं कि प्यार न हो।
जहाँ हो उम्मीद इसकी वहाँ नहीं मिलता।।

याद रखो! यदि आप सब कुछ पाना चाहते हो तो आपमें सब कुछ खोने की शक्ति होनी चाहिए। तभी आपको सब कुछ मिलेगा जैसे कबीर ने कहा है :—

चाह गई चिन्ता मिटी मनुआ बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिये सोई संहसाह।।

कुछ लोगों का विचार है कि सब कुछ परमात्मा ही करता है परन्तु यह

सत्य नहीं है। परमात्मा केवल सृष्टिसृजन, पालन, संहार, वेदज्ञानदाता एवं कर्मफल दाता है शेष कर्म व्यक्ति करता है। उदाहरणत :–

1. परमात्मा ने पृथ्वी बनाई और व्यक्ति ने उस पर घर, बाग़ आदि बना दिये।
2. परमात्मा ने पहाड़ बनाये और व्यक्ति ने उस पर मार्ग बना दिये।
3. परमात्मा ने संख्या बनाया और आदमी ने कुश्ता बना दिया।
4. परमात्मा ने मिट्टी बनाई और आदमी ने बर्तन, खिलौने आदि बना दिये।
5. परमात्मा ने पत्थर और आदमी ने शीशा बना दिया।

आनंद का स्रोत केवल अध्यात्म है। इसका अर्थ है कि स्वभाव और भौतिकवाद का अर्थ है प्रभाव। अतः हमारे जीवन में दोनों का सुन्दर समन्वय होना चाहिए। इस का अर्थ यह भी है स्वयं की ओर जाना। अध्यात्म क्या है?यह जानना कि मैं मरता नहीं हूँ और नहीं कभी मरा हूँ। केवल भौतिक शरीर मरता है। हम सब यात्री हैं और जीवन एक पड़ाव है। अतः प्रतिदिन आत्मावलोकन करना चाहिए। सूक्ष्म शरीर पर ही पड़े संस्कार अंकित होते हैं। सदा प्रभु को याद रखो। योग दर्शन अध्यात्म का सारामृत है। अविवेक से हटकर विवेक की ओर अपने मन को लगाना ही योग है। वह व्यक्ति कभी भी सुखी नहीं हो सकता जो यह नहीं जानता कि उसे क्या करना चाहिए। जब वह स्वयं को जानेगा तभी उसे प्रतीत होगा कि वह क्या चाहता है।

जब व्यक्ति केवल लेना ही लेना चाहता है तो वह स्वार्थ होता है। परन्तु जब वह लेता भी है और देता भी है तो वह व्यवहार बन जाता है। परन्तु इसके विपरीत जब वह केवल देता ही देता है तो वह प्रेम कहलाता है। प्रेम मानवता की सुगंध है। जिस व्यक्ति के हृदय में प्रेम होता है वही दूसरों के प्रति दया व परोपकार करता है। ऐसी कोई भी समस्या नहीं है जिसका समाधान प्रेम न हो। प्रेम से सब को वशीभूत किया जा सकता है। प्रेम से जानवर भी अधीन हो जाते हैं। महात्मा बुद्ध ने प्रेम को प्रार्थना, महावीर ने वात्सल्य और ईसा ने परमात्मा को प्रेम के नाम से पुकारा। प्रार्थना बड़ों से, प्रेम बराबर वालों से और वात्सल्य छोटों से होता है। गाय और बछड़े की तरह

वात्सल्य करो। गाय का वात्सल्य निःस्वार्थ प्रेम है। मानव को परमात्मा ने प्रेम के लिये पैदा किया था और पदार्थ उपयोग के लिए पैदा किये थे। परन्तु मानव पदार्थों से प्रेम कर बैठा और आदमी का उपयोग करने लग गया। प्रेम की महत्ता पर प्रकाश डालते हुये कबीर लिखते हैं :–

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित हुआ न कोय
ढ़ाई अक्षर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।।
जिस घर प्रेम न संचरे सो घर जा मसान।
जैसे खाल लोहार की सांस लेते बिन प्रान।।
मीन को प्रेम है जल से, पतंगे को प्रेम है जलन से,
एक मरता है विरह से और दूसरा मरता है मिलन से।

प्रेम की रोटी में वह स्वाद होता है जो छप्पन प्रकार के भोगों में नहीं होता। प्रेम से वशीभूत होकर श्रीराम ने शबरी के झूठे बेर खा लिये। श्रीकृष्ण ने विदुर की पत्नी के केले के छिलके खा लिये। प्रेम वासनाहीन होता है और जब यह सिमटता है तो वासना बन जाता है और जब प्राणीमात्र में फैलता है तो साधना बन जाता है।

मैं आपकी सेवा में प्रेम के विषय पर एक शिक्षाप्रद कहानी प्रस्तुत करना चाहता हूँ। एक सेठ की चार पुत्रवधुएं थीं। एक दिन लक्ष्मी ने सेठ से आकर कहा, अब मैं आपके घर से जाना चाहती हूँ आप केवल एक वर मांग लो। सेठ ने अपनी बहुओं की राय पूछी। पहली बहू ने कहा जमीन मांग लो, दूसरी ने कहा सोना मांग लो, तीसरी स्कूल मांग लो, परन्तु चौथी बहु ने कहा कि लक्ष्मी से प्रेम मांग लो ताकि चारों बहुओं में प्रेम बना रहे। सेठ जी ने लक्ष्मी से प्रेम मांग लिया। लक्ष्मी ने कहा अब मैं तेरे घर को छोड़कर नहीं जाऊंगी क्योंकि जहाँ प्रेम है वहीं लक्ष्मी रहती है यदि घर में प्रेम होता है तो 80 वर्ष का वृद्ध भी जीना चाहता है। यदि घर में प्रेम न हो तो 20 वर्ष का जवान भी आत्महत्या करना चाहता है। इसके विषय में आपकी सेवा में स्वामी विवेकानंद के जीवन के निश्छल प्रेम का एक प्रेरक प्रसंग प्रस्तुत करना चाहता हूँ।

चीन में उन दिनों कुछ शहरों को छोड़ कर शेष स्थानों में विदेशियों के प्रवेश पर रोक लगा दी थी। कभी भूल से कोई वहाँ पहुँच जाता तो चीनी

मरने—मारने पर उतारू हो जाते थे और उसकी जान संकट में पड़ जाती। एक बार स्वामी विवेकानंद चीन भ्रमण पर गए। उनकी किसी गांव के भ्रमण की इच्छा हुई। दो जर्मन पर्यटकों की इच्छा वहाँ का ग्राम्य जीवन देखने की थी, परन्तु साहस के अभाव के कारण उनके प्रवेश की हिम्मत नहीं हो रही थी। उन्होंने यह बात स्वामी विवेकानंद जी से कही तो उन्होंने ने कहा :—

सारी मनुष्य जाति एक है। हमें विश्वास है कि यदि हम सच्चे हृदय से वहाँ के लोगों से मिलने चलें तो वे लोग हमें मारने की अपेक्षा प्रेम से ही मिलेंगे।

वह जर्मन पर्यटकों को लेकर गांव की ओर चल पड़े। दुभाषिया उसके लिए तैयार नहीं हो रहा था। जब स्वामी विवेकानंद जी नहीं रुके तो वह भी उनके साथ चला तो गया परन्तु अंत तक उसे यही भय बना रहा कि कहीं वे लोग उन्हें मारें नहीं। गांव वाले विदेशियों को देख कर लाठी लेकर मारने दौड़े। स्वामी विवेकानंद जी ने उनकी ओर स्नेहपूर्ण दृष्टि डालते हुए कहा :—

क्या आप लोग अपने भाइयों से प्रेम नहीं करते?

दुभाषिये ने यही बात उनकी भाषा में पूछी तो वे बेचारे बड़े लज्जित हुए और लाठी फैंक कर स्वामी जी के स्वागत— सत्कार में जुट गए। यह देख कर जर्मन पर्यटक बोले :—

सच यदि आप जैसा निश्छल प्रेम सारे संसार के लोगों में हो जाए तो धरती पर कहीं भी कलह न रह जाए।

प्रेम का रिश्ता खून के रिश्ते से भी बड़ा होता है। संबंधों की कड़ी प्रेम से होती है। प्रेम में देना ही होता है परन्तु लेना कुछ भी नहीं होता। प्रेम लुटाने से मिलता है। यदि आप किसी कुएं की मुंडेर पर जाकर आवाज़ दोगे कि मैं आपसे प्रेम करता हूँ तो कई गुणा आवाज़ लौट कर आपको आयेगी। यदि आवाज़ दोगें कि मैं आपसे घृणा करता हूँ तो कई गुणा वही आवाज़ लौट कर आपको आयेगी। अतः अपने घर में नमक मिर्च की डिब्बिया रखिये और साथ में एक खुली डिब्बी में प्रेम लिखकर रखिये। एक हिन्दी कवि के शब्दों में :—

प्रेम वीराने को गुलिस्तान बना देता है।
प्रेम परिचय को पहचान बना देता है।।
मैं आप बीती कहता हूँ औरों की नहीं।
प्रेम इंसान को भगवान् बना देता है।।

जो वस्तु जहाँ पर होती है वहीं पर मिलती है। एक बार मुल्ला नरसुद्दीन जयपुर से रोजा ताजमहल देखने के लिए चला वह अनपढ़ था। रास्ते में जब मथुरा आई वहाँ पर रेड़ियो चल रहा था कि यह आगरे का आकाशवाणी केन्द्र है। वह आगरा समझ कर वहीं उतर गया और रिक्शा वाले से कहा कि मुझे ताजमहल ले चलो। रिक्शा वाले ने सोचा आज मुर्गा फसा है वह उसे लेकर मथुरा की एक तंग गली में ले गया। रिक्शा वाले ने कहा आगे रिक्शा नहीं जाती। ताजमहल सामने वाली गली में है। वह वहाँ पर पैदल चला गया। वहाँ जाकर खट्टर काका मिल गया। मुल्ला नरसुद्दीन ने उससे कहा मैं सुबह से ताजमहल ढूँढ रहा हूँ। परन्तु मिला नहीं। खट्टर काका ने उसे दो चपत लगाये और कहा कि मैं एक महीने से कुतुबमीनार ढूँढ़ रहा हूँ। मुझे आज तक नहीं मिली। भाई! जो चीज जहाँ है ही नहीं वह कैसे मिलेगी। कुतुबमीनार दिल्ली में और ताजमहल आगरा में ही मिलेंगे न कि मथुरा में। हम किसी से प्रेम करते हैं उसका मूल्य नहीं अपितु हमसे कितने व्यक्ति प्रेम करते हैं उसका मूल्य है। हमें प्राणीमात्र से प्रेम करना चाहिये और जहाँ तक हो सके दूसरे व्यक्तियों की सहायता भी करनी चाहिये। जैसे एक कवि के शब्दों में–

क्या मार सकेगी मौत उसे,
औरों के लिए जो जीता है।
मिलता है जहाँ का प्यार उसे,
औरों के जो आँसू पीता है।।

जैसे व्यक्ति के विचार होंगे वैसा ही जीवन बन जायेगा। यदि किसी भी व्यक्ति से आप को शिकायत है तो उसकी अच्छाइयाँ एक सप्ताह तक एक कॉपी पर लिखना। आपका उसके प्रति प्रेम जागृत हो जायेगा। अतः प्रेम जीवन का महामंत्र है।

यदि व्यक्ति सारी कामनाएं छोड़ दे तो परमात्मा के समान हो जाये। संसार में पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं – आँख, कान, नाक, रसना और त्वचा। अतः मुख्यतः पांच प्रकार की निम्नलिखित कामनाएं होती हैं :–

1. देखने की कामना, 2. सुनने की कामना, 3. सूंघने की कामना, 4. चखने की कामना, 5. स्पर्श की कामना।

संसार के लोगों को इन पाँच प्रकार की कामनाओं ने सदा से पागल कर रखा है। ये कामनाएं पूरी होने पर अनेक कामनाएं पैदा हो जाती हैं। यदि ये पाँच कामनाएं पूरी हो जाये तो तभी शान्ति मिल सकती है। जैसे एक कवि के शब्दों में :–

जहाँ ले चलोगे वहीं मैं चलूंगा।
जहाँ नाथ रखोगे वहीं मैं रहूंगा।।
यह जीवन समर्पित चरणों में तुम्हारे।
तुम्हीं मेरे सर्वस्व तुम्हीं मेरे सहारे।।

यही शरणागति है। शरणागति का अर्थ है कि प्रभु की इच्छा में इच्छा रखना, उसकी इच्छा के प्रतिकूल इच्छा न रखना, प्रभु को सदा अपना रक्षक समझना, प्रभु की अनेक कृपाओं के प्रति कृतज्ञता रखना, अपना सब कुछ प्रभु का मानना और कभी भी किसी वस्तु का अभिमान न करना।

पता नहीं शरीर का कब अंत हो जाए। अतः सदा बिस्तर बांधे रहो। जिसका मन संसार में कहीं भी आसक्त नहीं है और जो मन से प्रभु को कभी नहीं भूलता और जो शरीर को सदा जुदा, अजर, अमर आत्मा अनुभव करता है बस वही बिस्तर बांधे तैयार है।

दुनियाँ से बातें करने के लिए फोन की जरूरत होती है और प्रभु से बात करने के लिए मौन की जरूरत होती है। फोन का बिल देना पड़ता है, भगवान् को दिल देना पड़ता है। माया के चाहने वाला बिखर जाता है और भगवान् के चाहने वाला निखर जाता है।

2. सुखी जीवन

धनहीन कहे धनवान सुखी,
धनवान कहे सुख राजा को भारी।
राजा कहे चक्रवर्ती सुखी,
चक्रवर्ती कहे सुख इन्द्र को भारी।।
इन्द्र कहे चतुरानन सुखी,
चतुरानन कहे विष्णु को सुख भारी।
तुलसीदास विचारि कहे,
प्रभुभक्ति बिन सब लोक दुखारी।। ——तुलसीदास

संसार में विभिन्न विचारधारा के व्यक्ति हैं। अतः अनेक विचार, समस्याएं, पंथ एवं ग्रंथ हैं। प्रत्येक व्यक्ति का पृथक्–पृथक् अस्तित्व, व्यक्तित्व एवं कृतित्व है। परन्तु सबकी मांग एक ही है——सुख, शांति और आनंद। सुख मिलता है भोग से, शान्ति मिलती है योग से और आनन्द मिलता है प्रभु की निरंतर निष्काम एवं अनन्य भक्ति से। क्योंकि सुख शरीर का, शांति मन का और आनन्द ही परमात्मा है अर्थात् आनन्द परमात्मा का पर्यायवाची शब्द है। हम केवल सुखी होना नहीं चाहते अपितु दूसरे से अधिक सुखी होना चाहते हैं इसलिये दुःखी हैं।

वस्तुतः संसार का कोई भी सुख ऐसा नहीं जिसमें दुःख न मिला हो। सुख व दुःख दोनों जुड़वा भाई हैं। अतः सुख के साथ दुःख भी अवश्य जुड़ा है। केवल जो व्यक्ति रब की रज़ा में रहता है ऐसा योगी ही सुख–दुःख में सम होता है। जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों में–

प्रभु प्यारे से जिसका संबंध है।
उसे हर वक्त आनन्द ही आनन्द है।।

सुख निम्नलिखित तीन प्रकार के होते हैं–

1. शारीरिक सुख : इसको राजसी, तामसी सुख एवं जड़ संयोगजन्य सुख भी कहा जाता है।

ये सांसारिक विषय भोगों के सुख हैं। बहुधा व्यक्ति इन्हीं को वास्तविक सुख मानते हैं। परन्तु ये सभी क्षणिक एवं सीमित हैं, इन सुखों के पश्चात् दुःख भी अवश्य आते हैं। जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों में :–

एक से दिन न रहे किसी के समय बदलता जाए।
रात कटेगी दिन भी होगा रात से क्यों घबराए।।
सुख दुःख की संसार कहानी सुख दुःख का है मेल।
जो सुख पाने की आशा है तो पगले दुःख भी झेल।।
जो जीवन में सुख ही सुख हो तो सुख भी दुःख हो जाए।।

शास्त्राकारों ने लिखा है–

प्रतिकूल वेदनीयं दुःखम् अनुकूल वेदनीयं सुखम्।

मन की प्रतिकूल अवस्था दुःख है एवं मन की अनुकूल अवस्था का नाम सुख है। सुख प्राप्ति के लिये निम्नलिखित पाँच इच्छाओं से बचना चाहिये।

1. अपेक्षा, 2. उपेक्षा, 3. समीक्षा, 4. परीक्षा, 5. प्रतिज्ञा।

2. आत्मिक सुख : इसको सात्विक सुख एवं जड़ चेतन संयोग सुख भी कहा जाता है। यह आत्मिक सुख ज्ञानियों का सुख है। इसमें परोपकार की भावना अधिक रहती है। संसार में सात्विक प्रकृति के व्यक्तियों की संख्या बहुत कम होती है। इससे स्वर्ग की प्राप्ति होती है। हम देखते हैं कि व्यक्ति मुख्यतः शारीरिक विकास तक ही जीता है। परन्तु इसके साथ–साथ आत्मिक एवं सामाजिक विकास बहुत कम व्यक्ति करते हैं जैसे :–

1. मैं कौन हूँ ?हम नहीं जानते। मैं था, मैं हूँ और मैं रहूँगा। परन्तु यह भौतिक शरीर एक दिन नहीं रहेगा।

2. मेरा लक्ष्य क्या है?मेरे जीवन का मुख्योद्देश्य है आनन्द प्राप्ति।

इसके विषय में मैं आप को एक शिक्षाप्रद कहानी सुनाना चाहता हूँ कि एक बार की बात है कि बारह यात्री तीर्थ यात्रा के लिये निकले। मार्ग में एक नदी आती थी न कोई पुल था न नाव थी। इन यात्रियों में से एक बुद्धिमान व्यक्ति था। उसने कहा :–

''देखो! घबराओ नहीं, नदी को अवश्य पार करना है। सब लोग एक दूसरे का हाथ पकड़ लो। हम सब मिलकर पार हो जायेंगे।''

सबने दृढ़ता से एक दूसरे के हाथ पकड़ लिये और नदी को पार कर लिया। बुद्धिमान व्यक्ति ने कहा :—

''अब गिनती कर लो कि कहीं कोई व्यक्ति नदी में तो नहीं डूब गया। दूसरे व्यक्ति ने कहा—''सब से अधिक बुद्धिमान व्यक्ति आप ही हैं और आप ही गिनो।''

उसने गिनना आरम्भ किया और एक से लेकर ग्यारह तक सबको गिन डाला और स्वयं को गिनना छोड़ दिया। वह चौंककर बोला—ये तो ग्यारह हैं एक व्यक्ति कहाँ गया?

दूसरे व्यक्ति ने कहा—''ठहरो मैं गिनता हूँ।'' उसने भी स्वयं को गिनना छोड़ दिया और कहा—ये तो ग्यारह हैं।

सब व्यक्तियों ने ऐसे ही किया। सब ने स्वयं को गिनना छोड़ दिया। सबने ही ग्यारह ही गिने और सब व्यक्ति रोने लगे कि उनका एक व्यक्ति डूब गया। जब वे रो रहे थे कि एक और यात्री आया और उसने पूछा, ''क्या हुआ है भाई! तुम रोते क्यों हो?''

उन्होंने कहा—हम बारह थे। नदी को पार करते हुए एक व्यक्ति डूब गया। अब ग्यारह शेष रह गये हैं। इसलिए रोते हैं। उस व्यक्ति ने एक दृष्टि में उन्हें देखा कि ये तो बारह हैं। तब बोला—

''देखो! यदि मैं तुम्हारे बारहवें व्यक्ति को खोज दूँ तो?''

''तब तो हम तुम्हें भगवान् मान लेंगे।''

उसने कहा ''बहुत अच्छा! सब बैठ जाओ। मैं प्रत्येक व्यक्ति के मुख पर चपत मारूँगा जिसे पहली चपत लगे वह कहे एक जिसे दूसरी चपत लगे वह कहे दो। इसी प्रकार सब बोलते जाओ।''

वे सब बैठ गये। उस यात्री ने पहले व्यक्ति के मुख पर चपत मारकार कहा—''एक'' पहले ने कहा हाँ ''एक''। इसके बाद दूसरे के मुख पर चपत मारकर कहा—''दो'' दूसरे ने कहा ''दो''। इसी प्रकार सबने ही किया। सब प्रसन्न हो गये कि उनको बारहवाँ साथी मिल गया। सब ने चपत मारने वाले को कहा—

''आप तो हमारे भगवान् हैं।''

आपको इन यात्रियों की मूर्खता पर हँसी आती है। परन्तु सोचकर देखों हम स्वयं क्या कर रहे हैं?हम बारह यात्री चले थे जीवन की यात्रा पर पाँच कर्मेन्द्रियाँ–वाणी, हाथ, पैर मलद्वार और मूत्रद्वार–पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ–आँख, कान, नाक, रसना और त्वचा, ग्यारहवाँ मन और बारहवाँ आत्मा। हमने आत्मा को भुला दिया। ग्यारह ही ग्यारह दिखाई देते हैं। बारहवाँ दृष्टिगोचर नहीं होता। इन ग्यारह के लिए हम सब कुछ करते हैं। सारा दिन धन कमाने के लिए या काम वासना की पूर्ति के लिये ही लगे रहते हैं। बारहवें साथी आत्मा के लिए कुछ भी नहीं करते। इन ग्यारह को हम प्रत्येक प्रकार का भोजन देते हैं। परन्तु आत्मा को हमने भूखा बिठा रखा है। जैसे एक उर्दू शायर अकबर इलाहाबादी लिखते हैं–

हे हबीब (दोस्त) क्या कार–ए–नुमायाँ (विशेष कार्य) कर गये।
बी.ए. हुए नौकर हुए पैंशन मिली और मर गये।।

3. शाश्वत सुख : इसको विभिन्न ग्रंथों में आनन्द, शान्ति, अमृत, चेतन, संयोगजन्य सुख, दुःखनिवृति भी कहा गया है।

यह स्थायी होता है। यह सदा बढ़ता रहता है। इसको प्रेमानंद या ब्रह्मानंद भी कहा जाता है। सुख और आनंद में केवल यही अंतर है कि सुख हमें पाँच ज्ञानेन्द्रियों–आँख, कान, नाक, जीभ एवं स्पर्श से मिलता है जबकि आनंद हमें सुषुप्ति अवस्था (गहरी नींद), परोपकार और समाधि में प्रभु द्वारा मिलता है। वस्तुतः सुख–दुःख, लाभ–हानि, उत्थान–पतन, संयोग–वियोग जन्म–मरण, फूल–कांटे जुडवां भाई हैं और साथ–साथ रहते हैं। परन्तु जो व्यक्ति आसक्ति व मोह–ममता से रहित होता है, वही आनंद का अनुभव करता है क्योंकि संसार में प्रत्येक शब्द का विलोम होता है जैसे सुख का दुःख, जीवन का मृत्यु, लाभ का हानि आदि परन्तु आनन्द शब्द का विलोम शब्दकोश में नहीं है। जिस व्यक्ति को आनन्दानुभूति होती है उसको ''गीता'' में स्थितप्रज्ञ के नाम से पुकारा गया है। यह न कर्म द्वारा और न ज्ञान द्वारा मिलता है। परन्तु यह प्रभु के प्रति सम्पूर्ण समर्पण के पश्चात् निरंतर, निष्काम, अनन्य प्रभुभक्ति के उपरांत भगवत्प्राप्ति हो जाने के पश्चात् मिलता है। जैसे

कि ऋग्वेद में कहा गया है :—

ओ३म् विश्वदानीं सुमनसः स्याम —ऋग्वेद 6.52.5

हम सदा आनंदित और प्रसन्न मन रहे। इसी प्रकार एक उर्दू शायर ने लिखा है :—

सूरज सफर में है, चांद सितारे सफर में हैं।
जमीन सफर में है और आसमां सफर में हैं।।
तस्कीने—दिल (मन की शांति) के वास्ते हर शै है बेकरार।
तस्कीने—दिल के वास्ते सारे सफर में हैं।।
फिर भी यहाँ हर चीज मिलती है।
पर तस्कीने—दिल नहीं मिलता।।

इस प्रकार दुःख भी निम्नलिखित तीन प्रकार के होते हैं :—

1. आध्यात्मिक दुःख :— ये निम्नलिखित दो प्रकार के होते हैं।

(1) शारीरिक दुःख :— शरीर को कोई भी रोग या चोट लगने से जो दुःख होता है वह शारीरिक दुःख कहलाता है।

(2) मानसिक दुःख :— काम, क्रोध, लोभ, मोह, अंहकार आदि विकारों के कारण जो दुःख होते हैं वे मानसिक दुःख कहलाते हैं। इन की दवा संसार के किसी भी डॉक्टर के पास नहीं होती।

वस्तुतः संसार के प्रत्येक व्यक्ति को आधि, व्याधि और उपाधि का दुःख है। आधि है मानसिक दुःख, व्याधि है। शारीरिक दुःख और उपाधि का अर्थ है जो कुछ उसके पास है वह छिन जाने का डर। जैसे कोई व्यक्ति कहता है कि मेरा स्वास्थ्य न बिगड़ जाये। कोई कहता है मेरा धन न चला जाए आदि जब ये तीनों दुःखों की चिन्ता समाप्त हो जाती है तो स्वतः ही व्यक्ति की समाधि लग जाती है।

2. आधिभौतिक दुःख :— ये वे दुःख होते हैं जो किसी भी व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों से होते हैं जैसे अपने मित्रों, प्रियजनों आदि के द्वारा दिये गये दुःख।

3. आधिदैविक दुःख :— ये वे दुःख होते हैं जो हम प्राकृतिक

आपदाओं जैसे भूकम्प, आँधी, बाढ़ आदि से होते हैं।

वस्तुतः मानव जीवन सुख–दुःख का सुन्दर समन्वय है। व्यक्ति के जीवन में न सदा सुख रहता है और न दुःख रहता है। अपितु सुख–दुःख साथ–साथ चलता है। तभी एक कहावत प्रसिद्ध है सब दिन न हो समान। सुख कहने से बढ़ता है और दुःख कहने से घटता है। जैसे पंत जी के शब्दों में–

मैं न चाहता चिर सुख मैं न चाहता चिर दुःख।
सुख–दुःख की खेल मजोली, खोले जीवन अपना मुख।।
सुख–दुःख के मधुर मिलन से, फिर परिपूर्ण हो यह जीवन।
फिर शशि में ओझल हो घन और घन में ओझल हो शशि।।

निम्नलिखित चार चीजों की कभी भी पूर्ति नहीं होती–

1. मौत का मुँह कभी भी नहीं भरता क्योंकि जो व्यक्ति पैदा होता है उसकी मृत्यु अनिवार्य है। इसमें कोई भी व्यक्ति अपवाद नहीं है।

2. सागर भी कभी नहीं भरता है क्योंकि इसकी गहराई और स्थान असीमित है। दूसरे इसका पानी पृथ्वी में समाता रहता है।

3. मानव का पेट भी सदा के लिए नहीं भरता है। थोड़ी देर के लिए भर जाता है और फिर खाली हो जाता है क्योंकि कुछ समय के पश्चात् भोजन, दूध, फल, चाय, पानी आदि पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है। इनके अभाव में शरीर चल नहीं सकता।

4. हमारी इच्छाएं भी कभी पूरी नहीं होती क्योंकि एक इच्छा पूरी होती है तो अनेक इच्छाएं और पैदा हो जाती हैं। इसके विपरीत यदि हम एक इच्छा पर नियंत्राण कर लेते हें, तो अनेक इच्छाएं भाग जाती हैं। इसलिये आदिशंकराचार्य ''भजगोविंदम'' में लिखते हैं :–

अंग गलितं पलितं मुण्डं, दशनविहीनं जातं तुण्डम्।
वृद्धोयाति गृहीत्वा दण्डं, तदपि न मुंचत्याशापिण्डम्।।

–श्लोक नं. 15

संसार के भोग भोगते मानव के अंग गल जाते हैं। बाल सफेद पड़

जाते हैं और चांद सा मुखड़ा पापड़ का टुकड़ा बन जाता है। बुढ़ापे में कमजोरी के कारण लाठी टेक–टेक कर चलना पड़ता है। परन्तु इच्छाएं फिर भी पूरी नहीं होती। हम बूढ़े हो जाते हैं परन्तु इच्छाएं सदा युवा रहती है, क्योंकि मानव की इच्छाएं असीमित हैं। अतः एक उर्दू शायर ने ठीक ही लिखा है :–

दफ़नाना देखभाल के हजरत भरे की लाश।
लिपटी हुई कफ़न में कहीं कोई आरजू न हो।।

सुखी जीवन की प्राप्ति के लिये निम्नलिखित बातों को आचरण में लाना चाहिये––

1. शारीरिक विकास, 2. आर्थिक प्रगति, 3. आत्मिक उन्नति, 4. सामाजिक कर्त्तव्य, 5. आस्तिक बुद्धि, 6. गुण ग्राही बनना आदि।

निष्कर्षतः इतना ही कहना काफी होगा कि कुछ भी पाकर हृदय की तरंगें शांत एवं तृप्त नहीं होती क्योंकि हृदय तो प्रभु मिलन के लिए बना है। संसार में क्षणिक सुख तो है और उसके साथ दुःख भी भोगना पड़ता है। परन्तु सच्चा सुख (आनंद) कहीं भी नहीं है जैसे ''सेवक'' के शब्दों में :–

न इस संसार में सुख है और न परिवार में सुख है।
न सुख है, नौकरी में और न कारोबार में सुख है।।
न कोठी में, न बंगले में, न मोटरकार में सुख है।
न हीरे मोती, सोना चांदी के भण्डार में सुख है।।
न ऐश में, न कैश में, न मौज बहार में सुख है।
न कुर्सी में, न लीडरी में, न राज दरबार में सुख है।।
ऐ 'सेवक' नहीं इस दुनियाँ के बाज़ार में सुख है।
अगर सुख है तो उस प्यारे प्रभु के प्यार में सुख है।।

3. प्रार्थना

मैं परमात्मा का उत्तम देवालय हूँ।
मैं स्वयं से प्रेम करता हूँ।।
मैं स्वयं को स्वीकार करता हूँ।
मैं परमात्मा और मृत्यु से डरता हूँ।।
मैं परमात्मा की रजा में रहता हूँ।
मैं परमात्मा का धन्यवाद करता हूँ।।

अध्यात्म जगत् का सब से महत्वपूर्ण शब्द प्रार्थना है। प्रार्थना का अर्थ है प्रभु का धन्यवाद करना जो कुछ भी मिला है उसके लिए प्रभु के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना और जो नहीं मिला है उसके लिए गिला न करना। जैसे स्वामी शिवानंद लिखते हैं :—

Prayer is not asking prayer is commnion with God through single-minded devotion.......... Prayer is thanks giving to God for all His blessings.

—Bliss Divine P-440

प्रार्थना कोई मांग नहीं है। प्रार्थना प्रभु के प्रति अनन्य भक्ति है। प्रार्थना प्रभु द्वारा दिये गये आशीर्वादों के लिए उसका धन्यवाद करना है।

इसके अतिरिक्त प्रार्थना का एक यह भी अर्थ है कि संसार के सब व्यक्तियों के कल्याण एवं परोपकार के लिए प्रार्थना करना। इसके विषय में मैं आपकी सेवा में वेदों के निम्नलिखित दो मंत्र प्रस्तुत करना चाहता हूँ। इन मंत्रों में साम्प्रदायिकता से ऊपर उठकर सारे संसार के लोगों के कल्याण की कामना की गई है :—

1. **ओ३म् भूर्भुवः स्वः।**
   तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि।
   धियो यो नः प्रचोदयात्।। —यजुर्वेद 36.3

हे प्रभु। आप सर्वरक्षक, प्राणाधार, सुखस्वरूप, दुःखनाशक, सत्—चित्—आनंद स्वरूप हैं। आप ही सृष्टि के उत्पादक, पालक, संहारक, वेदज्ञज्ञनदाता एवं कर्मफलदाता हैं। हम आपके प्रेरणादायक, शुद्धस्वरूप, वरणीय, परमपवित्र, दिव्यस्वरूप का हृदयमंदिर में ध्यान धरते हैं। आप हमारी बुद्धियों को कृपया श्रेष्ठ मार्ग की ओर प्रेरित कीजिए।

2. ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद्भद्रं तन्नऽआसुव।। —यजुर्वेद 30.3

हे प्रभु! आप कृपया हमारे सम्पूर्ण, दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिए और जो कल्याणकारी गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं वे हमें प्राप्त कराइए।

इन दो मंत्रों में मानवता के कल्याण एवं परोपकार के लिए निःस्वार्थभाव से प्रार्थना की गई है। यह भी सच्ची प्रार्थना है। परन्तु जो हमें मिला है उसे हम भूल जाते हैं। जो नहीं मिला है उसके लिए गिला करते हैं। जैसे एक कवि के शब्दों में :—

उसने मुझे बहुत कुछ दिया।
मैंने उसका धन्यवाद न किया।।

मुख्यतः व्यक्ति धार्मिक स्थानों में जाकर प्रार्थना नहीं करते अपितु भिखारियों की भाँति अपनी—अपनी मांगों की सूची परमात्मा के आगे रखते हैं। मैंने धार्मिक स्थानों पर भिखारियों की पंक्तियां देखी हैं जोकि अपनी—अपनी मांगें मांगते हैं। परन्तु प्रभु का धन्यवाद करने वाला कोई बिरला ही होता है। मांगने के निम्नलिखित तीन अर्थ हैं :—

1. **प्रभु से शिकायत करना :—** आप प्रभु से शिकायत करते हो कि मुझे ये नहीं मिला है और वह नहीं मिला है। जो कुछ भी आप को मिला है उससे आप संतुष्ट नहीं हो। सदा प्रभु का धन्यवाद करते रहो अर्ज़ प्रभु से ही करो, अपना फर्ज़ पूरा करो, कर्ज़ सिर पर न रहे और मर्ज़ शरीर में न रहे। ताकि आप प्रभु की निरन्तर, निष्काम, अनन्य भक्ति करके आनंद प्राप्त कर सकों।

2. **सलाह देना :** मांगने का यह भी अर्थ है कि आप स्वयं को प्रभु से अधिक बुद्धिमान समझते हों कि मुझे यह भी देना चाहिए था।

3. **प्रभु के अन्तर्यामी होने पर संदेह करना :—**

परमात्मा अन्तर्यामी है। इसलिये वही जानता है कि आपके लिए कौन सी वस्तु अच्छी है या बुरी। वही हमारा माता—पिता है। जैसे एक माता के चार पुत्र हैं। एक परीक्षा देने जा रहा है तो वह उसको घी के मालपूड़े बना कर

देती है ताकि उसका ज्ञान एवं स्मरण शक्ति बनी रहे और वह परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त कर सके। दूसरा पुत्र खेत में सब्जी लगाने जा रहा है उसे वह प्याज की सब्जी से भोजन करवाती है ताकि उसको कही लू न लगे जाये। तीसरा पुत्र का पेट खराब है। इसलिये वह उसे खिचड़ी खिलाती है ताकि उसका पेट ठीक रहे। चौथा पुत्र बीमार है तो वह उसको दवा देती है ताकि वह स्वस्थ हो जाये। इसी प्रकार परमात्मा हमारा माता–पिता होने के कारण हमें वही वस्तु देता है जो हमारे लिए हितकारी हो। जैसे एक उर्दू शायर ने लिखा है :–

न मैं यह चाहता हूँ न वो चाहता हूँ।
बस अपने रब्ब की रजा चाहता हूँ।।

परन्तु मुख्यतः जो कुछ हमें परमात्मा ने दे रखा है उसके लिए तो हम उसका धन्यवाद नहीं करते हैं जो नहीं मिला है उसके लिए गिला करते रहते हैं। जैसे शेख शादी इतने ग़रीब थे कि उनके पास जूते भी नहीं थे। वे एक दिन नवाज़ अदा करने के लिए मस्जिद की ओर जा रहे थे। उन्होंने मार्ग में एक कफ़ीर को देखा जिसके पाँव ही नहीं थे। तो शेख शादी ने ख़ुदा का धन्यवाद किया कि उनके पास जूते न सही पाँव तो हैं।

इसी प्रकार अमेरीका का अपने समय का सबसे बड़ा धनी व्यक्ति अनडर्यू कार्नोगी जब मृत्युशैया पर आखरी सांसें ले रहा था तो पत्रकारों ने उससे पूछा कि आप कैसा अनुभव कर रहे हो। तो उसने उत्तर दिया कि मैं बहुत दुःखी होकर मर रहा हूँ क्योंकि मैं 10 अरब डॉलर की सम्पदा छोड़कर ही मर रहा हूँ जबकि मेरा लक्ष्य 100 अरब डॉलर की सम्पदा छोड़कर मरने का था।

प्रभु के प्रति धन्यवाद का शब्द आपके मुख से तभी निकलेगा यदि आप अस्पतालों में जाकर उन रोगियों को देखोगे जिनके शरीर पर पलस्तर बंधा है और जिनको ग्लूकोज चढ़ा हुआ है। कई रोगी रोग की पीड़ा के कारण चिल्ला रहे हैं। आप जब अपाहिज आश्रमों में जाकर अपाहिजों को देखोगे जो स्वयं खाना भी नहीं खा सकते। किसी के हाथ नहीं, किसी के पाँव नहीं हैं। इसके अतिरिक्त पागलखानों में जाकर पागलों की दुर्दशा देखोगे जिन्हें जंजीरों में

बांध रखा है। वस्तुतः आपकी प्रार्थना तभी आरंभ होती है जब आपकी मांग बंद हो जाती है। जैसे एक कवि ने कितना सुंदर कहा है –

जो असल में मस्ती में डूबे,
उन्हें क्या परवाह है ज़िन्दग़ी की।
जो चढ़े और उतरे वह तो मस्ती नहीं है,
ये तो प्रेम की बातें हैं ऊधो।।
बंदगी तेरे बस की नहीं है
यहाँ सर देके होते हैं सौदे।
आशिक़ी इतनी सस्ती नहीं है।।

अतः अभी से मेरी बात मानो कि परमात्मा से अपनी मांगें मांगना बंद कर दो और उसे धन्यवाद देना आरंभ कर दो। जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों में :–

मुझे तूने मालिक बहुत कुछ दिया है।
तेरा शुक्रिया है तेरा शुक्रिया है।
न मिलती अगर दी हुई दात तेरी।
तो क्या थी जमाने में औक़ात मेरी।
यह बंदा तो तेरे सहारे जिया है।
तेरा शुक्रिया है तेरा शुक्रिया है।
यह जायदाद दी है, यह औलाद दी है।
मुसीबत में हर वक्त इमदाद की है।
तेरा ही दिया मैंने खाया पीया है।
तेरा शुक्रिया है तेरा शुक्रिया है।
मेरा ही नहीं तू सभी का है दाता।
सभी को सभी कुछ है देता दिलाता।
जो खाली था दामन को तूने भरा है।
तेरा शुक्रिया है तेरा शुक्रिया है।
मेरा भूल जाना तेरा न भुलाना
तेरी रहमतों का कहाँ है ठिकाना।

तेरी इस मोहब्बत ने पागल किया है।
तेरा शुक्रिया है तेरा शुक्रिया है।
तेरी बन्दगी से मैं बन्दा हूँ मालिक।
तेरे ही कर्म से मैं जिन्दा हूँ मालिक।
तुम्हीं ने तो जीने के काबिल किया है।
तेरा शुक्रिया है तेरा शुक्रिया है।
मुझे तूने मालिक बहुत कुछ दिया है।
तेरा शुक्रिया है तेरा शुक्रिया है।

4. कर्म

सूरज कहता है नहीं किसी से मैं प्रकाश फैलाता हूँ।
बादल कहता नहीं किसी से मैं पानी बरसाता हूँ।।
कोयल कहती नहीं किसी से मैं अच्छा गा लेती हूँ।
सुमन कहे न किसी से मैं सुगंध फैलाता हूँ।।
बातों से नहीं किन्तु कर्मों से होती है जग में पहचान।
घुरे पर भी नाच दिखाकर मोर झटक लेता है मान।।

कर्म शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'कृ' धातु से हुई है जिसका अर्थ है करना। वस्तुतः कर्म उस क्रिया को कहते है जिससे किसी दूसरे व्यक्ति को लाभ या हानि हो। परन्तु व्यक्ति को कुछ क्रियाएं प्राकृतिक रूप से करनी पड़ती हैं जैसे पलकों का झपकना, जम्हाई लेना, छींकना, खांसना, मल–मूत्र त्यागना आदि। ये सब प्राकृतिक क्रियाएं भोग रूपी कर्म हैं क्योंकि इनसे किसी भी व्यक्ति को लाभ या हानि नहीं होती है। ऐसी क्रियाओं का कोई कर्मफल नहीं होता है। कर्म करने के निम्नलिखित पाँच आधार हैं :–

1. कारण : प्रत्येक कर्म का कोई न कोई कारण होता है। कारण के बिना कोई भी कर्म नहीं हो सकता। महर्षि कणाद वैशेषिक दर्शन में लिखते हैं :–

कारणाभावात् कार्याभावः –4.3

जब कारण नहीं तो कार्य भी नहीं होगा।

2. कर्त्ता : प्रत्येक कर्म को करने वाला कोई न कोई कर्त्ता होता है। इसके बिना कर्म नहीं हो सकता।

3. साधन : प्रत्येक कर्म को करने के लिये साधन आवश्यक होता है।

4. प्रयत्न : प्रत्येक कर्म को करने के लिए प्रयत्न एवं पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है। इसके बिना कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। भाग्य का निर्माण भी पुरुषार्थ से होता है।

5. भाग्य : ये चारों साधन तो मानव के हाथ में हैं, परन्तु किसी कर्म की पूर्ति के लिए भाग्य का होना भी आवश्यक है। क्योंकि यह मानव के हाथ में

नहीं है। अतः भाग्य का भी हमारे जीवन में अत्यधिक महत्व होता है। किसी भी कर्म की पूर्ति के लिये कर्म और भाग्य साथ–साथ चलते हैं। यदि भाग्य को कर्मों का समूह कहा जाये तो इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति न होगी। मुख्यतः निम्नलिखित तीन प्रकार के कर्म होते हैं :–

(1) क्रियमाण कर्म (तदबीर) – ये वे कर्म होते हैं जो व्यक्ति अपनी इच्छा से करता है। यह है कर्ता के सूक्ष्म शरीर पर जो संस्कार डालता है वह संचित कर्म होता है और वहीं पर जमा रहता है जब कि प्रारब्ध में नहीं आता। महर्षि दयानंद ''आर्य्योद्देश्यरत्नमाला'' में लिखते हैं–

जो वर्तमान में किया जाता है, सो क्रियमाण कर्म कहाता है।

यदि कोई व्यक्ति यह कहे कि उसके द्वारा अच्छे बुरे कर्म हो रहे हैं वे सब प्रभु इच्छा या प्रारब्ध से होते हैं तो उसका यह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि पुण्य पाप कराने में प्रभु या प्रारब्ध को हेतु मानने से मुख्यतः चार दोष आते हैं, जो निर्विकार, निरपेक्ष, समदर्शी, दयालु एवं न्यायकारी प्रभु के लिये सर्वथा अनुपयुक्त हैं। यह मानना उचित नहीं कि प्रभु पाप पुण्य करवाते हैं, कर्म के लिये तो प्रभु की प्रेरणा है, परंतु उसका पालन करना, न करना व्यक्ति के अधिकार में है। जैसे सरकारी अफसर कानून के अनुसार चलता हुआ प्रजारक्षण का अधिकारी है परन्तु अधिकार रूढ़ होकर उसका सदुपयोग या दुरूपयोग करना उसके अधिकार में है, यद्यपि वह कानून से बंधा है एवं कानून तोड़ने पर दण्ड का पात्र ही होता है। वही हालत कर्म करने में मानव के अधिकार की है।

प्रत्येक व्यक्ति कर्म करने में स्वतंत्र है परन्तु कर्मफल भोगने में परतंत्रा है। क्योंकि कर्मफल किसी के हाथ में नहीं है। जैसे योगिराज श्रीकृष्ण ''गीता'' में लिखते हैं–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुभूर्मा ते संगोऽस्तवकर्मणि।। 2.47
तुझे काम करना है ओ मरदेकार,
नहीं उसके फल पर तुझे इख्तियार।

किये जा अमल और न ढूंढ उसका फल,

अमल कर अमल कर न हो बेअमल।।

भावार्थ – तेरा कर्म करने में ही अधिकार है। फलों में कभी नहीं। इसलिये तू कर्मों के फल का हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।

लोकसंगहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि।। 3.20

अमल से बुजुर्गों ने पाया कमाल (गुण)।

जनक जैसे इन्सां हुए बाकमाल (गुणवान)।।

इस तरह नेकी किये जाओ तुम,

जहाँ को भलाई दिये जाओ तुम।

भावार्थ – जनक आदि लोग आसक्तिरहित कर्म द्वारा ही सिद्धि तक पहुँचे थे। यह देखते हुए कि लोकसंग्रह बनाये रखने के उद्देश्य से भी तुझे कार्य करना चाहिये।

वस्तुतः ये क्रियमाण कर्म ही संचित एवं प्रारब्ध के हेतुर्भूत हैं। अतः व्यक्ति को क्रियमाण शुभकर्म करने का विशेष प्रयत्न करना चाहिये, क्योंकि इन्हीं के करने में वह स्वतंत्र होता है।

2. संचित कर्म – ये वे कर्म होते हैं जो पूर्व जन्म मे किए गए हों या वर्तमान काल में किये जाते हैं, परन्तु जिनका भोग पिछले जन्म में या वर्तमान में नहीं मिलता है। जो कर्म अभी तक फलीभूत नहीं हुये हैं जिनका हिसाब देना अभी शेष है। दरअसल, अच्छे बुरे कार्य के करने से जो बीज रूप में संस्कार कारण शरीर में रहते हैं उनको ही संचित कर्म कहते हैं। इस प्रकार किसी भी व्यक्ति के इकट्ठे किये हुए और एक धरोहर के रूप में संगृहीत कर्म ही संचित कर्म कहलाते हैं।

अतः महर्षि दयानन्द ने ''आर्य्योद्देश्यरत्नमाला'' में लिखा है :–

जो क्रियमाण का संस्कार ज्ञान में जमा होता है, उसको ''संचित संस्कार'' कहते हैं।

जैसे एक किसान चिरकाल से खेती करता है, खेती में जो अनाज उत्पन्न होता है। उसका खेती करना कर्म है और अनाज से भरा हुआ कोठा उसका संचित है। ऐसे ही कर्म करना क्रियमाण और उसके पूरा होते ही हृदय रूपी बृहत, भण्डार में जमा होना संचित है। संचित कर्म के अनुसार ही बुद्धि की वृत्तियां होती हैं। संचित कर्म ही के कारण, उसी के अनुकूल हृदय में कर्मों के लिये प्रेरणा होती है। सात्विक, राजसी, तामसी, सारी कर्म प्रेरणाओं का मुख्य कारण संचित कर्म ही होता है। अतः संचित कर्म सदा प्रेरणा करता है, तदनुसार कर्म करने के लिए व्यक्ति को बाध्य नहीं कर सकता।

3. प्रारब्ध कर्म (तक़दीर) – ये वे कर्म हैं जिनको व्यक्ति पूर्व जन्म में करता है परन्तु इनको भोगता वर्तमान जन्म में है। संचित कर्मों में से जो पककर फल देते हैं उनको प्रारब्ध कहते हैं। वस्तुतः ये संचित कर्म ही होते हैं जिनका फल हमें इस जन्म में मिलता है। संचित और प्रारब्ध कर्मों को करने में हम पराधीन हैं। इस प्रकार के कर्म केवल भगवत्प्राप्ति के बाद ही क्षय होते हैं।

अतः महर्षि दयानन्द ने ''आर्य्योद्देश्यरत्नमाला'' में लिखा है– **जो पूर्व किये हुए कर्मों के सुख दुःख रूप फल का भोग किया जाता है, उसको ''प्रारब्ध'' कहते हैं।**

सुख दुःख रूप प्रारब्ध का भोग तीन प्रकार होता है जिसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है :–

(1) अनिच्छा प्रारब्ध – मार्ग में चलते हुए व्यक्ति पर वृक्ष टूट कर गिर जाना, बिजली गिर जाना, घर में बैठे हुए पर छत गिर जाना आदि दुःखरूप और मार्ग में चलते हुये धन मिल जाना, लॉटरी निकलना आदि सुखरूप भोग, जिनको प्राप्त करने की न मन में इच्छा की थी और किसी दूसरे की ही ऐसी इच्छा थी। अतः इस प्रकार से अचानक दैवयोग से स्वयं सुख–दुःख आदि रूप भोगों का प्राप्त होना अनिच्छा प्रारब्ध है।

(2) परेच्छा प्रारब्ध – सोये हुए व्यक्ति पर चोरों का आक्रमण होना, जानकर किसी भी व्यक्ति के द्वारा दुःख पहुँचाना आदि दुःख रूप और कुपथ्य करते हुये किसी भी बीमार व्यक्ति को पकड़कर रोकना, बिना ही इच्छा के दूसरे के द्वारा धन मिल जाना आदि सुखरूप भोग, जो दूसरों की इच्छा से

प्राप्त होते हैं उसको परेच्छा प्रारब्ध के नाम से पुकारा जाता है। जैसे किसी व्यक्ति ने किसी व्यक्ति के घर चोरी की। इसमें उसके घर में चोरी होना तो उसके प्रारब्ध का भोग है, परन्तु जिसने चोरी की उसने अवश्य ही नवीन कर्म किया है जिसका फल उसे आगे भोगना पड़ेगा, क्योंकि किसी भी कर्म के भोग का हेतु पूर्व में निश्चित् नहीं होता।

(3) स्वेच्छा प्रारब्ध – एक व्यापारी द्वारा व्यापार में कष्ट स्वीकार करना, उससे लाभ होना, न होना या होकर नष्ट हो जाना आदि स्वेच्छा प्रारब्ध है। इन कर्मों के करने के लिये जो प्रेरणात्मक वासना होती है उसका कारण प्रारब्ध है। तदन्तर क्रिया होती है। क्रिया का सिद्ध होना न होना, सुकृत दृष्कृत का फल है। जैसे एक व्यक्ति रोग निवृति के लिए औषधि लेता है। उसका रोग भाग जाता है। इसमें यह समझाना कठिन है कि यह उस औषधि का परिणाम है अथवा रोग समाप्त होने पर स्वतः ही रोग समाप्त हो जाता है। क्योंकि रोग पूर्वकृत पाप के फलस्वरूप भी होता है। कुपथ्य से होने वाला रोग प्रायः औषधि लेने से दूर हो जाता है, परन्तु कर्मजन्य रोग भोग समाप्त होने तक दूर नहीं होता है और कौन सी कुपथ्य जन्य, अतः औषधि सब रोगों में लेनी चाहिये।

यह वैदिक कर्मसिद्धान्त है कि जो व्यक्ति जैसा कर्म करता है उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है। जैसे तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' में लिखा है :–

करम प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फलु चाखा।। –अयोध्याकाण्ड 218. 2

इस संसार में कर्म ही प्राधान्य है जो जैसा कर्म करता है उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है। जैसे महाभारत एवं ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखा है–

नाभुक्तं क्षीयते कर्म कव्य कोटिशतैपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभं।।

बिना भोगे हुए कर्मों का नाश करोड़ों कल्प तक भी नहीं होता है। शुभ–अशुभ कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों में :–

बो के बीज दु:ख के सुख कैसे पा सकोगे।
बोया पेड़ बबूल का तो क्या आम खा सकोगे।।
ईश्वर है – न्यायकारी सब के कर्मों का फल दाता।
उससे किसी कर्म को कैसे छुपा सकोगे।।

परन्तु गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं :–

सर्वधर्मान् परित्यज्यन्य मामेकम् शरणम् व्रज।
अहम् त्वां सर्वपापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। –18.66

तू सब अधर्म छोड़ और ले मेरी राह,
तू माँग आके दामन में मेरे पनाह।
तेरे पाप सब दूर कर दूँगा मैं,
न ग़मगीं हो मसरूर (आनन्दित) कर दूँगा मैं।।

सारे अधर्मों का परित्याग करके तू मेरी तरह प्रभुशरण में आजा। मैं तुझको सारे पापों से मुक्त कर दूंगा। तू शोक मत कर।

प्रभुशरण में सुख, शान्ति एवं आनन्द तो मिलता है परन्तु किये हुए कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है, क्योंकि कर्मफल को भोगे बिना उससे छुटकारा नहीं है। मन की आसक्ति परमात्मा में हो और कर्म इन्द्रियों द्वारा हो यही कर्मयोग है। परन्तु मुख्यतः हम इसके विपरीत कर्म करते हैं। हम मन की आसक्ति संसार में माता–पिता, भाई, बहन, पत्नी और बच्चों में लगाते हैं और इन्द्रियों से परमात्मा की भक्ति जैसे हाथों से कीर्तन करते हैं, कानों से प्रवचन सुनते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि मुख्यतः हम तन परमात्मा में और मन संसार में लगाते हैं। यह मन ही बंधन एवं मोक्ष का कारण है।

यहाँ तक कि कुछ पौराणिक भाइयों का विचार है कि भगवत्प्राप्ति से सारे पाप भी माफ हो जाते हैं क्योंकि भगवत्प्राप्ति के पश्चात् कर्मयोगमाया से होते हैं जोकि फल नहीं देते। इसके अतिरिक्त यदि अभिमान रहित होकर कोई भी कर्म करे तो भी उसका फल नहीं भोगना पड़ता। परन्तु वेदानुसार यह उचित नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति कर्म करने में पूर्ण स्वतंत्र है परन्तु उसके फल भोगने में ईश्वरीय व्यवस्था के अनुसार परतंत्र है। विधाता के आगे किसी का

वश नहीं चलता है चाहे किसी भी देवी–देवता के आगे सर पटकिये, मन्नत कीजिए। अनेकों व्यक्ति तीर्थ स्थानों में जाकर देवी देवताओं की मन्न्त करके वृद्ध हो गये। परन्तु संतान सुख नहीं मिला, न गूंगा बोल सका, न बहरा सुन सका, न जन्मांध देख सका, न कोई रोगी ठीक हुआ। परन्तु इन सब रोगों के लिए सब को दवाई लेनी पड़ती है। अतः प्रभुशरण से पापों से कभी भी मुक्ति नहीं हो सकती है। परन्तु किये हुए पापों पर पश्चाताप करने से पापों को सहन करने की शक्ति बढ़ जाती है और कामवासना की समाप्ति हो जाती है। अतः व्यक्ति को अच्छे कर्म करने चाहिए। जैसे नत्था सिंह ''निर्दोष'' ने लिखा है :–

न भस्मी रमाने से, न रेशमी दुशालों से।
बंदा पहचाना जाता है, सिर्फ आमालों से।।

इसी प्रकार हिन्दी कवि राकेश जैन कितना सुन्दर लिखते हैं :–

आँखों की शोभा सुरमे से नहीं शर्म से होती है।
शरीर की शोभा शृंगार से नहीं कर्म से होती है।।
आप मानों या मत मानो, पर सच जानो।
जीवन की शोभा धन से नहीं धर्म से होती है।।

5. धर्म

धर्म ही जाता रहा तो जीवन किस काम का।
स्वास्थ्य ही जाता रहा तो धन किस काम का।।

धर्म शब्द धृत्र धरणे धातु से बना है जिसका अर्थ है धारण करना। वे सत्य एवं अटल सिद्धान्त या ईश्वरीय नियम जिनके धारण करने से सारा संसार थमा हुआ है और ईश्वर की रची सृष्टि के प्रत्येक कार्य में जो सत्य रूपी नियम पूर्णरूप से प्रत्येक वस्तु में रमा हुआ है, वही धर्म है। अतः मानव का धर्म सदा से एक था, एक है और एक ही रहेगा और वह है मानवता जैसे एक पंजाबी कवि के शब्दों में–

धर्म इक है सारयाँ बन्दयाँ दा, न दो, तिन, चार होंदे।
धर्म खातिर जेड़े लड़े ने, बेड़े उन्हां दे कदे न पार होंदे।।

किसी भी वस्तु का धर्म उसका गुण, कर्म और स्वभाव होता है। धर्म के सिद्धान्त किसी मानव द्वारा बनाये नहीं जाते अपितु प्रकृति द्वारा स्वयं निर्धारित हैं। धर्म का अर्थ है सद्‌भाव। इसप्रकार जब तक जीवन में सद्‌भाव नहीं आता तब तक जीवन में धर्म का अवतरण नहीं होगा। जैसे अग्नि का धर्म उष्णता, जल का शीतलता, सूर्य का प्रकाश देना, मानव का दया, परोपकार आदि। अतः शुद्ध मन का आचरण ही धर्म है। सारे धार्मिक स्थान जैसे मंदिर, मस्जिद, गिरिजाघर, गुरुद्वारे, आर्यसमाज आदि धर्म की पाठशालायें हैं और इसके विपरीत दफ़्तर, दुकान, स्कूल, कॉलेज आदि धर्म की प्रयोगशालाएं हैं।

यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि धर्म सबके लिए होता है परन्तु सम्प्रदाय कुछ लोगों के लिए होता है। इसप्रकार धर्म का क्षेत्र सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक होता है। अतः धर्म एक होता है और सम्प्रदाय अनेक होते हैं। परन्तु साधारणतः व्यक्ति दोनों में अंतर नहीं करते हैं। स्वामी शिवानन्द जी ने अपनी पुस्तक Bliss Divine में धर्म की कितनी सुन्दर परिभाषा प्रस्तुत की है :––

Real religion is one. It is the religion of truth and love. It is the religion of the heart. It is the religion of service, sacrifice and renunciation. It is the religion of goodness, kindness and tolerance. P-472

वस्तुतः धर्म एक है। यह सत्य एवं प्रेम का धर्म है। यह हृदय का धर्म है, यह सेवा, बलिदान और त्याग का धर्म है। यह नेकी, दयालुता और सहनशीलता का धर्म है। मनु जी महाराज ने ''मनुस्मृति'' में धर्म के विभिन्न दस लक्षणों का वर्णन इस प्रकार किया है––

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं, शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकं धर्म लक्षणम्।। –6.92

1. धैर्य, 2. क्षमा, 3. मन का निग्रह, 4. चोरी का त्याग, 5. पवित्रता, 6. इन्द्रियों को वश में करना, 7. बुद्धि, 8. विद्या, 9. सत्य, 10. क्रोध का अभाव, ये 10 धर्म के लक्षण हैं।

इस प्रकार महात्मा विदुर जी ने भी महाभारत के उद्योगपर्व (विदुरनीति) में धर्म के निम्नलिखित 8 लक्षण बताये हैं––

इज्याध्ययनदानानि, तपः, सत्यं, क्षमा घृणा।

अलोभ इति मार्गेऽयं, धर्मस्याष्टविधः स्मृतः।।

–श्लोक 119

1. यज्ञ, 2. स्वाध्याय, 3. दान, 4. तप, 5. सत्य, 6. क्षमा, 7. दया और 8. लोभ का अभाव––ये 8 धर्म के लक्षण हैं।

इनमें प्रथम चार लक्षण 1. यज्ञ, 2. स्वाध्याय, 3. दान और 4. तप घमंडी व्यक्ति में भी मिलते हैं।

परन्तु शेष चार 1. सत्य, 2. क्षमा, 3. दया, 4. लोभ का अभाव केवल संत महात्माओं में ही मिलते हैं।

वस्तुतः धार्मिक व्यक्ति कौन होता है; इसके विषय में मैं आपकी सेवा में एक दृष्टांत प्रस्तुत करना चाहता हूँ। एक राजा के तीन पुत्र थे। राज्य का उत्तराधिकारी उनमें से एक को बनाना था। राजा ने विचार करने के पश्चात् उन तीनों को बुलाया और कहा :–

तुम तीनों अलग–अलग दिशा में जाओ और तुम्हें जो भी सबसे अधिक धर्मात्मा व्यक्ति मिले उसे लेकर आओ।

तीनों धर्मात्मा व्यक्ति की खोज के लिए अपने–अपने रास्ते पर चले गये। कुछ समय पश्चात् सबसे बड़ा राजकुमार एक मोटे व्यक्ति के साथ लौटा। उसने राजा से कहा :–

पिताश्री! ये सेठजी बहुत दान करते हैं। इन्होंने बहुत मंदिर बनवाए हैं, तालाब बनवाए हैं।

राजा ने सेठ जी का सत्कार किया और काफी धन देकर सम्मानपूर्वक विदा कर दिया।

दूसरे दिन मंझला राजकुमार अपने साथ एक निर्धन ब्राह्मण को लेकर आया और उसने राजा से कहा :—

पिताश्री! ये बहुत ही धर्मनिष्ठ है, इन्होंने चारों धामों की पैदल यात्रा की है, इन्हें चारों वेदों, पुराणों एवं शास्त्रों का सांगोपांग ज्ञान है जिनमें से कुछ तो उन्हें कंठस्थ भी हैं।

राजा ने उनका भी सम्मान किया और खूब सारी दक्षिणा देकर विदा कर दिया।

कुछ दिन के पश्चात् सबसे छोटा राजकुमार अपने साथ एक सामान्य से दिखने वाले व्यक्ति को साथ लेकर आया। उसके शरीर पर पूरे कपड़े भी नहीं थे। शरीर उसका न मोटा—तगड़ा था और न ही बहुत कमजोर। राजकुमार ने अपने पिताश्री से कहा :—

यह व्यक्ति सड़क पर एक कुत्ते के जख्मों को धोकर उस पर औषधि का लेप लगा रहा था। मैंने जब इससे पूछा—तुम्हें इससे क्या मिलेगा?तो इसका उत्तर था—मुझे तो इससे कुछ नहीं मिलेगा, परन्तु इस कुत्ते को थोड़ा आराम अवश्य मिल जायेगा। राजा ने उस व्यक्ति से पूछा—

क्या तुम धर्म—कर्म करते हो?

उस व्यक्ति ने उत्तर दिया—

महाराज! मैं किसान हूँ, अनपढ़ हूँ, धर्म—कर्म के बारे में कुछ नहीं जानता। हाँ कोई जरूरतमंद दिखे तो यथासंभव उसकी सहायता कर देता हूँ। कोई बीमार हो तो सेवा कर देता हूँ, मांगे तो थोड़ा अनाज भी दे देता हूँ।

राजा ने उत्तर दिया——कुछ पाने की आशा रखे बिना दूसरे की भलाई करना ही धर्म है। अतः सब से छोटे राजकुमार के चयन से संतुष्ट राजा ने उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

वस्तुतः मानव धर्म एक ही है। परन्तु आज विश्व में लगभग 3600 सम्प्रदाय फैले हुये हैं जोकि समय—समय पर किसी न किसी महापुरुष या

पैग़म्बर द्वारा तत्कालीन आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर चलाये गये हैं। जैसे ईसाइयों के 76 सम्प्रदाय हैं किन्तु तीन सूत्र ऐसे हैं जो उन्हें परस्पर सम्बद्ध रखते हैं, वे हैं––क्राइस्ट, क्रॉस और बाइबल। सब का पैग़म्बर क्राईस्ट, चिन्ह क्रॉस और धार्मिक ग्रंथ बाइबल है।

इसी प्रकार मुसलमानों के भी 36 सम्प्रदाय हैं और तीन सूत्र हैं–मोहम्मद, काबा और कुरान। सबका पैग़म्बर मोहम्म्द है तीर्थ स्थान काबा और धार्मिक ग्रंथ कुरान है। इसी प्रकार हिन्दुओं और सिक्खों के भी अनेक सम्प्रदाय हैं। जैसे शैव सम्प्रदाय, शांत सम्प्रदाय, वैष्णव सम्प्रदाय, राधास्वामी, आर्य समाज, श्रीराम शरणम्, The Art of Living, सिख सम्प्रदाय रामधारिये, निरंकारिये आदि। परन्तु ये सब सम्प्रदाय एवं आंदोलन है न कि धर्म। क्योंकि किसी महापुरुष द्वारा अपने अहं की पूर्ति, मानवकल्याण और विभिन्न रुचि के कारण ही इनका प्रचलन किया गया था। यदि हम गंभीर दृष्टि से देखें तो इन सारे सम्प्रदायों एवं आन्दोलनों की पूजा पद्धति विभिन्न अवश्य है, परन्तु सब का उद्देश्य एक ही है। वह है परमात्मा में अटल विश्वास। सुख, शान्ति एवं आनंद प्राप्ति एवं दया, असहाय, दुःखी मानवता की निष्काम सेवा आदि। इसलिए वेदानुकूल आचरण ही धर्म है। अतः धर्म की परिभाषा करते हुए मुझे कहना पड़ा–

धर्म न मन्दिर में मिले, धर्म न मस्जिद में मिले।
धर्म न गिरजे में मिले, धर्म न गुरुद्वारे में मिले।
धर्म न ग्रंथों में मिले, धर्म न हाट बिकाये।
धर्म उसे ही मिले जो इसको अपनाये।।

6. भक्ति

भक्ति शब्द भज् धातु से बनता है जिसका अर्थ है भजन अर्थात् प्रभु की निष्काम सेवा। महर्षि पंतजलि ने योगदर्शन में भक्ति को ''ईश्वरप्राणिधान'' योगिराज श्रीकृष्ण ने गीता में ''शरणागति'' और महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में ''उपासना'' नामों से पुकारा है। वस्तुतः वर्तमान की मुख्य समस्याओं–हिंसा, युद्ध, भय और आतंकवाद का समाधान है–अध्यात्म, ज्ञान, भक्ति और ध्यान क्योंकि भक्ति में वह शक्ति, विजय, शांति और आनंद है जो भौतिकवाद में नहीं। परन्तु बिना ज्ञान और कर्म के कोरी भक्ति से भी विशेष लाभ होने वाला नहीं है।

भक्त बिल्ली के द्वारा मुँह में पकड़े हुए बिलुंगड़े के समान होता है क्योंकि स्वयं प्रभु उसको कोमलता परन्तु दृढ़ता से पकड़े हुये होते हैं और उसका पतन नहीं हो सकता। प्रभु केवल प्रेम के भूखे हैं। प्रभु को खुश करना है तो हमें उनकी भक्ति में लगना पड़ेगा और इसके लिए निम्नलिखित मुख्य पाप नहीं करने चाहिए। इनमें मांसाहार का सेवन नहीं करना। क्योंकि यह दया समाप्त कर देता है। नशा नहीं करना इससे तपस्या समाप्त हो जाती है। व्यभिचार नहीं करना, इससे स्वच्छता खत्म हो जाती है आदि जुआ नहीं खेलना इससे सत्य का नाश हो जाता है। इस प्रकार भक्त का साधन भक्ति है साध्य परमानंद। जिस प्रकार मीठा खाने के पश्चात् सारे पकवान फीके लगते हैं उसी प्रकार भक्ति का रस पीने के पश्चात् सारे रस फीके लगते हैं। इसलिये मानव जीवन में भक्ति का अत्यधिक महत्व है। प्रभु स्वाध्याय, तप, तपस्या, कर्म, ज्ञान आदि से वशीभूत नहीं होते, वे केवल भक्ति से ही वशीभूत होते हैं। जैसे :–

जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना।
श्रवन रंध्र अहिभवन समाना।।
नयनन्हि संत दसन नहिं देखा।
लोचन मोरपंख कर लेखा।।
ते सिर कटु तंबुरि समतूला।

जे न नमत हरि गुर पद मूला।।
जिन्ह हरिभगति हृदय नहिं आनी।
जीवत सव समान तेइ प्रानी।।
जो नहिं करइ राम गुन गाना।
जीह सो दादुर जीह समाना।।
कुलिस कठोर निठुर सोई छाती।
सुनि हरिचरित न जो हरषाती।।

—रामचरितमानस (बालकाण्ड) 112.1—4

शिव पार्वती को भक्ति की महत्ता और भक्तिहीन व्यक्ति का वर्णन करते हुए उपदेश करते हैं कि जिन व्यक्तियों ने कानों से हरिकथा नहीं सुनी उनके कानों के छिद्र सांप के बिल के समान हैं। जिन आँखों ने संतदर्शन नहीं किया वे आँखें मोर के पंख की चंद्रिकाओं के समान हैं। जो सिर प्रभु एवं महापुरुष के चरणों पर नहीं झुकते, वे कड़वी तूंबी के समान हैं। जो व्यक्ति प्रभु को अपने हृदय में नहीं लाते अर्थात् जिनमें इसका अभाव है व प्राणी जीते जी मुर्दे के समान हैं। जो जीभ रामगुणगान नहीं करती वह मेंढक की जीभ के समान है। वैसे ही भक्तिहीन व्यक्ति अपवित्र, अमंगल और उसके संगी भी अपवित्र होते हैं। वह छाती वज्र समान कठोर और निष्ठुर है जो प्रभु गुणगान सुनकर भी हर्षित नहीं होती है।

नारद भक्ति सूत्र में 84 सूत्र हैं जिनमें महर्षि नारद ने कहा है कि केवल निरंतर, निष्काम और अनन्य भक्ति और प्रभुकृपा द्वारा ही भगवत्प्राप्ति हो सकती है और इसका अन्य साधन नहीं है। दो शरीरों के मिलन का नाम वासना है, दो मनों के मिलन का नाम प्रेम है और भक्त एवं प्रभु के मिलन का नाम भक्ति है। प्रभु प्राप्ति के लिये शास्त्रों में कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग आदि उपायों का उल्लेख किया गया है। परन्तु इनमें भक्तियोग सबसे आसान होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति के लिये सर्वोपरि हे। जैसे देवर्षि नारद भक्ति सूत्र में लिखते हैं :—

सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकतरा। —सूत्र 25

भक्ति, कर्म, ज्ञान और योग से भी श्रेष्ठ है।

इसके अतिरिक्त सारे आचार्य जैसे कुमार (सनक, सनंदन, सनातन और सनत) महर्षि व्यास, शुकदेव, गर्गाचार्य, हनुमान, विभीषण आदि घोषणा करते हैं कि भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ हैं जैसे ''रामचरितमानस'' में भी लिखा है :–

वारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न मन तरिअ यह सिद्धांत अपेल।।

–उत्तरकाण्ड 122(क)

जल के मथने से भले ही घी पैदा हो जाये और रेत से भले ही तेल निकल आवे परन्तु प्रभुभक्ति के बिना संसार रूपी सागर से नहीं तरा जा सकता। यह एक अटल सिद्धान्त है। इसलिये एक उर्दू शायर ने सत्य ही लिखा है :–

मैं तुम्हें पाने की हरदम जुस्तजू (तलाश) करता हूँ।
सबसे तेरे प्यार की बस गुफ़्तगू (बातचीत) करता हूँ।
दिल में ही करता रहूं तेरी नामाज़े–इश्क़ मैं।
दिल में सजदा (प्रार्थना) और आँखों में वजू करता रहूं।

भक्ति में भावना ही श्रेष्ठ होती है। जैसे कि चैतन्य महाप्रभु जब जगन्नाथपुरी से दक्षिण की यात्रा पर जा रहे थे तो उन्होंने एक सरोवर के किनारे एक ब्राह्मण को गीता पाठ करते हुए देखा। वह संस्कृत नहीं जानता था और श्लोक अशुद्ध बोलता था। चैतन्य महाप्रभु वहाँ ठहर गये ताकि अशुद्धि के लिए टोकेंगे पर देखा कि भक्ति में विह्वल होने से उसकी आँखों में अश्रुपात हो रहा है। चैतन्य महाप्रभु ने आश्चर्य से पूछा, ''आप संस्कृत तो जानते नहीं, फिर श्लोकों का अर्थ क्या समझ में आता होगा और बिना अर्थ समझे आप इतने भावविभोर कैसे हो पाते हैं?''

उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, ''आपका यह कथन सर्वथा सत्य है कि मैं न तो संस्कृत जानता हूँ और न श्लोकों का अर्थ समझता हूँ। फिर भी जब मैं पाठ करता हूँ तो लगता है मानो कुरुक्षेत्र में खड़े हुए भगवान् अमृत वाणी बोल रहे हैं और मैं उस वाणी को दोहरा रहा हूँ। इस भावना से मेरी आत्मा आनंदविभोर हो जाती है।''

चैतन्य महाप्रभु उस भक्त के चरणों में गिर पड़े ओर उनसे कहा, ''तुम

हज़ार विद्वानों से बढ़कर हो। तुम्हारा गीता पाठ धन्य है। भक्ति में भावना ही प्रधान है। कर्मकांड तो उसका कलेवर है, जिसकी भावना श्रेष्ठ है उसका कर्मकांड अशुद्ध होने पर भी वह ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। भावनाहीन व्यक्ति शुद्ध कर्मकांड होने पर भी बड़ी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता।

इसके अतिरिक्त अभिमान, मान, आध्यात्मिक तुष्टि आदि प्रभुभक्ति में बाधाएं हैं। हमें सदा इनसे बचना चाहिए। प्रभु से प्रभुप्रेम और प्रभु मांगो। मन प्रभु में लगाइए और तन संसार में यही सच्ची भक्ति है। भक्ति निरंतर निष्ठावान और अनन्य होनी चाहिये। परन्तु इससे मन दिव्य नहीं होता है। यह केवल प्रभुकृपा से दिव्य होगा और तभी भगवत्प्राप्ति होगी। कर्म, धर्म और ज्ञान से केवल स्वर्ग की प्राप्ति होगी परन्तु प्रभुभक्ति से आनन्द प्राप्ति होगी जोकि प्रत्येक व्यक्ति चाहता है। पहले मन को शुद्ध बनाओ फिर अश्रु बहाओ और प्रभु को पाओ। परन्तु दुर्भाग्य है आजकल ऐसे प्रभुभक्त विरले ही मिलते हैं क्योंकि अधिकतर व्यक्ति भौतिकवादी हैं–जैसे पंडित प्रकाश चन्द्र कविरत्न लिखते हैं :–

कोई पूछता है तनख़्वाह कितनी है,
कोई पूछता है बैंकों में रुपया कितना जमाया है।
कोई पूछता है लाला शादी में तुम्हारी,
ससुराल से भी कितना नक़द माल आया है।।
कोई पूछता है बड़े साहब के बँगले पै,
डाली भेज, क्या ख़िताब क्या इनाम पाया है।
सब कुछ पूछते ''प्रकाश'' ये न पूछे कोई,
धर्म–धन, प्रभु–प्रेम कितना कमाया है।।

7. सत्संग

बिनु सतसंग बिबेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।।
सतसंगत मुद मंगल मूला।
सोइ फल सिधि सब साधन फूला।।
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई।
पारस परस कुघात सुहाई।।
विधिवस सुजन कुसंगत परहीं।
फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं।।

—रामचरितमानस (बालकाण्ड) 2.4,5

सत्संग की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए तुलसीदास जी लिखते हैं कि सत्संग के प्रभाव के कारण कोए, कोयल और बगुले हंस बन जाते हैं। अतः सत्संग के बिना विवेक नहीं होता। सत्संग कल्याण का मूल है। इसकी प्राप्ति ही फल है और सब साधनों को तो फूल समझना चाहिए। सत्संग के प्रभाव से दुष्ट व्यक्ति भी सुधर जाते हैं। जैसे पारसमणि के स्पर्शमात्र से लोहा भी सोना हो जाता हैं यदि दुर्भाग्यवश सज्जन कुसंग में पड़ जाते हैं तो वहाँ भी सांप की मणि के समान अपने गुणों का ही प्रकाश करते हैं। अर्थात् जिस प्रकार साँप का संसर्ग पाकर भी मणि उसके विष को ग्रहण नहीं करती एवं अपने सहज गुण प्रकाश को नहीं छोड़ती उसी प्रकार साधु व्यक्ति दुष्टों के संग में रहकर भी दूसरों को प्रकाश ही देते हैं, दुष्टों का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। वस्तुतः सत्संग का मानव जीवन में अत्यधिक महत्व है क्योंकि व्यक्ति जैसी संगति करता है वह वैसा ही हो जाता है। अतः पाश्चात्य विद्वान् गेरे लिखते हैं कि आप मुझे बताइये आपके संगी साथी कौन हैं और आपको मैं बता दूंगा कि आप कौन हैं। हम देखते हैं कि सत्संग के प्रभाव से कितने दुष्ट एवं मूर्ख व्यक्ति विख्यात् विद्वान् बन गये। जैसे कुछ पंडितों ने मूर्ख कालिदास का

विवाह विदुषी विद्योतमा से करवा दिया। परन्तु विद्योतमा ने उसकी मूर्खता जान कर उसे अपमानित करके घर से निकाल दिया और अपमान से पीड़ित कालिदास विद्वानों के सत्संग एवं स्वाध्याय के बल पर विश्व विख्यात कवि बन गये। अपनी पत्नी रत्नावली के मोह में फंसे तुलसीदास भी उसके ताने से विश्व विख्यात कवि बन गये और नारी प्रेम नारायण प्रेम में परिवर्तित हो गया। वेश्यागामी तहसीलदार अमीचंद महर्षि दयानन्द के सत्संग और ''अमीचंद तुम हो तो हीरे परन्तु कीचड़ में पड़े हो'' कहने मात्र से परिवर्तित होकर भजनोपदेशक एवं महात्मा बन गये। लेखराम जी का सत्संग सुनकर मुगलिया डाकू आर्य समाज का प्रचारक बन गया। इसी प्रकार मांसाहारी पटवारी फूलसिंह आर्य समाज के सत्संग के प्रभाव से महात्मा फूलसिंह बन गये। अतः अथर्ववेद में सत्य ही लिखा है :–

दूरे पूर्णेन वसति दूरे अनेन हीयते। **10.8.15**

विद्वानों, योगियों, महात्माओं के साथ रहने से व्यक्ति उन्नत होता है और आचारहीन लोगों के सम्पर्क में रहने से गिर कर पतित हो जाता है। जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों में –

जैसा संग वैसा रंग।
जैसा पानी वैसी वाणी।
जैसा अन्न वैसा मन।
जैसा विचार वैसा व्यवहार।
जैसी करनी वैसी भरनी।

अतः सत्संग का मानव जीवन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। जैसे वर्षा की एक बूंद यदि केले के खुले मुँह में चली जाये तो वह मुश्क काफूर बन जाती है। यदि वही वर्षा बूंद सीप के मुँह में चली जाये तो मोती बन जाती है और यदि वही वर्षा की बूंद साँप के मुँह में चली जाए तो वह विष बन जाती है। इसी प्रकार यदि वह गन्ने पर पड़ जाये तो वह मीठी हो जाती है। वस्तुतः बूंद तो एक ही है परन्तु संगति और कुसंगति के कारण उसमें इतना अंतर पड़

गया। इसी प्रकार मानव भी जैसी संगति करता है वह वैसा ही बन जाता है। इसलिये रहीम जी ने सत्संग की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहा है–

कदली, सीप, भुजंग मुख, स्वाति एक गुण तीन।
जैसी संगति बैठिए वैसा ही फल दीन।।

एक उर्दू शायर के शब्दों में–

और सब जगह तो रब की बात होती है।
पर सत्संग में रब से मुलाकात होती है।
और सब जगह मजहब के झगड़े हैं।
पर सत्संग में भक्त से भगवान् की बात होती है।।

सत्संग शब्द सत्+संग से बनता है। सत् का अर्थ है परमात्मा और संग का अर्थ है मिलन। सत्संग निम्नलिखित चार प्रकार का होता है :–

प्रभुमिलन और प्रभुप्रेम ही सर्वश्रेष्ठ सत्संग है। इस प्रकार के सत्संग के उज्ज्वल उदाहरण 'रामचरितमानस' के आरण्यकाण्ड में शबरी एवं सुतीक्षा नामक भक्तों के मिलते हैं। दूसरी प्रकार का सत्संग संत–महात्माओं का होता है जैसे महर्षि दयानंद, स्वामी विवेकानंद का सत्संग आदि। तीसरी प्रकार का सत्संग सच्चे भक्तों एवं वीतरागियों का सत्संग है। जैसे याज्ञवल्क्य के सत्संग से मैत्रेयी को ब्रह्मज्ञान हो गया और उद्दालक के सत्संग से श्वेतकेतु को भी ब्रह्मज्ञान हो गया। चौथी प्रकार का सत्संग आर्ष ग्रंथों एवं सत्शास्त्रों का स्वाध्याय ही सत्संग है।

वस्तुतः यदि कोई साधारण व्यक्ति बोलता है तो वह वार्तालाप बन जाता है। यदि कोई प्रोफेसर बोलता है तो वह लेक्चर बन जाता हैं यदि कोई नेता बोलता है तो वह भाषण बन जाता है। यदि कोई पंडित अपनी रोज़ी–रोटी के लिए बोलता है तो वह कथा कहलाती है। जैसे रामकथा, भागवत्कथा आदि। परन्तु यदि कोई सच्चा संत बोलता है तो वह सत्संग कहलाता है। अतः सत्संग की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कवि ''सेवक'' लिखते हैं :–

आदत है अगर कहीं जाने की
तो सत्संग में तुम जाया करो।
आदत है अगर कमाने की
तो अच्छे कर्म कमाया करो।।
आदत है अगर अपनाने की
तो सब के गुण अपनाया करो।
आदत है अगर गुस्सा खाने की
तो मन पर गुस्सा खाया करो।
आदत है अगर शर्माने की
तो पापों से शर्माया करो।
आदत है जो 'सेवक' गाने की
तो गीत प्रभु के गाया करो।

8. गुणग्राही बनना

सबके गुण अपनी हमेशा, गलतियाँ देखा करो।
ज़िन्दगी की हू–बहू तुम, झलकियाँ देखा करो।।

सदा गुण ग्राही बनों। दूसरों के अवगुण देखने के स्थान पर औरों के गुण और अपनी सदा गलतियाँ देखने में ही व्यक्ति का कल्याण है। जैसे हंस सदा मोती चुनता है और इसके विपरीत कौआ सदा कूड़ा–कर्कट ही खाता है। अतः हमें भी सदा हंस की भाँति औरों के गुण देखकर उन्हें अपने जीवन में अपनाने का भरसक प्रयत्न करना चाहिये। परन्तु दूसरों के अवगुण देखकर उनकी निन्दा करके तो हम भी कौए के समान हो जायेंगे। जब कभी व्यक्ति औरों के अवगुण निकालकर अंगुली उसकी ओर करता है तो उसे स्वयं के हाथ की शेष तीन अंगुलियाँ उसकी ओर मुड़कर आत्मनिरीक्षण करने की उसे चेतावनी देती है। यदि व्यक्ति केवल दूसरों के अवगुणों को देखकर निन्दा ही करता रहेगा तो निश्चित् रूप से उन अवगुणों को स्वयं अपना लेगा और इसके विपरीत यदि वह गुणग्राही बनकर अन्य व्यक्तियों के गुण अपने जीवन में अपनायेगा तो वह हंस बन जायेगा। जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों में :–

औरों के हम दोष न देखें, अपने दोष विचारें।
निन्दा करें न कभी किसी की, यही एक गुण धरे।।

हनुमान प्रसाद पद्दोदार लिखते हैं :–

याद रखों! हमें अपना यह दृष्टिकोण ही बदलना पड़ेगा, इस दृष्टिदोष को ही मिटाना होगा। जहाँ गुण दृष्टि हुई कि हमें सबमें गुण ही गुण दिखायी देने लगेंगे।

–परमार्थ की मन्दाकिनी पृष्ठ 79

केवल डॉक्टर, अध्यापक और वकील को दूसरों के अवगुण देखने का अधिकार है। शेष को नहीं। क्योंकि ऐसा करने से अन्य व्यक्तियों का कल्याण होता है। अब प्रश्न उठता है कि हम किससे क्या गुण सीखें :–

1. भक्त प्रह्लाद से प्रभुभक्ति।
2. एक लव्य से गुरु भक्ति।
3. श्रवण कुमार से पितृ भक्ति।
4. महर्षि दधीचि से त्याग।
5. भक्त ध्रुव से तपस्या।

6. श्रीराम से कर्म।
7. हनुमान से सेवा।
8. श्रीकृष्ण से मित्रता।
9. अर्जुन से वीरता।
10. दानवीर कर्ण से दान।
11. चोर से सावधानी।
12. डाकू से साहस।
13. बिल्ली से बिना आहट चलने की कला।
14. तोते से अनासक्ति।
15. कुत्ते से वफादारी।
16. शेर से स्वावलम्बी।
17. गधे से परिश्रम।
18. मुर्गे से उचित समय पर बाग देना।
19. कौए से एकांत में छिपकर सहवास करना।
20. फूलों से हँसना।

इसके विषय में एक कवि ने कितना सुन्दर लिखा है :–

फूलों से तुम हँसना सीखो, भँवरों से तुम गाना।
सूरज की किरणों से सीखो, जगना और जगाना।।
धुएँ से तुम प्यारे सीखो ऊँची मंजिल पाना।
पेड़ों से तुम प्यारे सीखो फल पाकर झुक जाना।।
मेहंदी के पत्तों से सीखो घिस–घिस कर रंग चढ़ाना
पतझड़ के पेड़ों से सीखो दुःख में धीर बंधाना।।
सुई और धागे से सीखो बिछड़े गले लगाना।
मुर्गे की बोली से सीखो प्रातः प्रभुगुण गाना।।
पानी की मछली से सीखो धर्म हेतु मर जाना।

9. तनाव दूर करने के मुख्य उपाय

हम देखते हैं कि अधिकाँश व्यक्ति तनाव ग्रस्त हैं। इसलिये अधिकतर मौतें भी तनाव के कारण होती हैं। पहले लोग किसी न किसी बीमारी जैसे प्लेग, हैज़ा, दमा आदि से अधिकाँश व्यक्ति मरते थे परन्तु आज इन बीमारियों पर नियंत्रण पा लिया गया है। आज की सबसे बड़ी बीमारी है तनाव। आज जितनी सुख सुविधाएं बढ़ रही हैं। उतना उतना तनाव भी बढ़ रहा है। इसका कारण है कि हमारा मन मजबूत नहीं है।

यहाँ तक कि अमेरिका में लगभग 65 प्रतिशत व्यक्तियों को नींद की गोलियाँ खाकर सोना पड़ता है। इसका मुख्य कारण ग़लत जीवन शैली, खानपान एवं भौतिकवाद की होड़। अमेरीका दुनियाँ का धनी देश है फिर वहाँ पर सबसे अधिक अशांति है क्योंकि धन से जीवन में क्षणिक सुख तो मिल सकता है परन्तु सच्ची शांति और आनंद नहीं मिल सकता। अतः जीवन में सुख, शांति एवं आनन्द की प्राप्ति के लिए तनाव दूर करने के मुख्य उपाय निम्नलिखित हैं :–

1. सन्तोष :– संतोष शब्द की व्युत्पत्ति सम+तोष शब्दों से हुई है जिसका भाव है समान रुचि। इसका भाव यह है कि वर्तमान परिस्थिति में संतुष्ट रहना और इसको बेहतर बनाने के लिए प्रयत्न करते रहना। यदि कोई व्यक्ति अपने जीवन को बेहतर बनाने के लिए प्रयत्न नहीं करता तो वह आलसी कहलायेगा। संतोष के दो पहलू हैं–धर्म और सहनशीलता। वस्तुतः संतोष संसार का सर्वोत्तम सुख है जिसकी उपलब्धि अपने से नीचे वाले व्यक्तियों को देखकर होती है। संतोष परम सुख है। जो व्यक्ति सदा संतुष्ट रहता है वही योगी है। अतः श्री राम और युधिष्ठिर वन में भी उतने ही संतुष्ट थे जितने राज महल में। यदि अपने भीतर संन्यास (तृप्ति) धारण कर लोगे तभी आपके जीवन में संतोष, शांति, प्रसन्नता, पवित्रता और सेवा की भावना तथा विनम्रता के दिव्य गुणों का पदार्पण हो जायेगा। इसके उपरांत प्रभु के प्रति सम्पूर्ण समर्पण भी हो जाएगा। अतः व्यक्ति को जीवन में सदा संतोष रखना चाहिए क्योंकि संतोष से ही सच्ची शान्ति एवं आनन्द मिलता है। यह कहा भी गया है संतोषी सदा सुखी लोभी सदा दुःखी। जैसे कबीर ने भी कहा

है :—

गोधन, गजधन, बाजधन और रतन धन खान।

जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान।।

जब व्यक्ति संतोषी हो जाता है तो वह विभिन्न विकारों—काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और ईर्ष्या को भी नियंत्रण कर लेता है। जैसे वह काम को संयम, क्रोध को क्षमा, लोभ को संतोष, मोह को अनासक्ति, अहंकार को विनम्रता और ईर्ष्या को अन्तःप्रेरणा द्वारा नियंत्रण में कर लेता है।

संतोषस्त्रिषु कर्त्तव्यः, स्वदारे भोजने धने।

त्रिषु चैव न कर्त्तव्योऽध्ययने, तप—दानयोः 7.6

तीन स्थानों पर संतोष करना चाहिये—अपनी स्त्री, अपने भोजन और अपने धन पर। परन्तु तीन स्थाना पर संतोष नहीं करना चाहिए—शास्त्रों के अध्ययन, तप और दान में अर्थात् इन को जितना हो सके बढ़ाते रहना चाहिये।

हनुमान पद्दोदार लिखते हैं :—

याद रखो! जिसका मन प्रत्येक परिस्थिति में संतुष्ट है वह परम सुखी है। वस्तुतः संतोष ही वह परम धन है, जिसे पाकर मनुष्य सदा धनी बना रहता है, कोई भी अवस्था उसे दीन—दरिद्र नहीं बना सकती। संतोष से प्राप्त होने वाला जो महान् पद है वह बड़े से बड़े सम्राट् के पद से भी ऊँचा और महान् है।

—परमार्थ की मन्दाकिनी पृ. 7.8

2. स्वाध्याय :— स्वाध्याय शब्द का अर्थ है आत्मनिरीक्षण और सद्ग्रंथों का अध्ययन। अतः वेद का वचन है—**स्वाध्यायन्य प्रमदितव्यम्** स्वाध्याय के विषय में कभी प्रमाद मत कीजिए। स्वाध्याय से मन में एकाग्रता आ जाती है ध्यान भी लग जाता और तनाव दूर हो जाता है। अतः स्वाध्याय का जीवन में अत्यधिक महत्व है। कवि वृंद के शब्दों में :—

सरस्वती के भण्डार की, बड़ी अपूर्व बात।

ज्यों—ज्यों खर्चे त्यों—त्यों बढ़े, बिन खर्चे घटि जात।।

3. सत्संग :–

सुत, दारा और लक्ष्मी, पापी के गृह भी होय।
संत समागम हरिकथा, तुलसी दुलर्भ दोय।।

पुत्र, स्त्री और धन तो पापी के घर में भी होते हैं। परन्तु सत्संग एवं प्रभुकथा ही अत्यंत दुलर्भ है और ये मानव को बड़े भाग्य से मिलती हैं।

सत्संग का मानव जीवन में अत्यधिक महत्व है क्योंकि उसके उत्थान एवं पतन का कारण ही संग होता है। संग के अनुसार ही उसका मन बनता है और मन के अनुसार क्रिया होती है। सत्संग से व्यक्ति के जीवन में सुख, शांति और आनंद आता है और वह तनावरहित हो जाता है।

4. संयम :–संयम का मानव जीवन में अत्यधिक महत्व है। संयमी व्यक्ति को क्रोध पर भी नियंत्रण कर लेता है और तनावरहित रहता है।

5. सेवा :–

सेवा जो निष्काम है, है उत्तम आचार।
जो फल की आशा करे, वह समझो व्यापार।।

नरेन्द्र आहूजा ''विवेक''

सच्चे अर्थों में तभी सेवा होगी यदि उसमें निम्नलिखित 6 बातें अपनाई जायें :–

(1) सेवा में अहंकार का अभाव :– सेवा में अहंकार का अभाव होना चाहिए। जब हम किसी व्यक्ति की सेवा करें हमें समझना चाहिए कि मैं तो साधनमात्र हूँ और यह सेवा प्रभु करा रहे हैं। ऐसा करने से आप में अहंकार की भावना नहीं आयेगी।

(2) सेवा में स्वार्थ का अभाव :– सेवा में स्वार्थ का अभाव होना चाहिए। यदि इसमें स्वार्थ होगा तो वह, निष्काम सेवा न रहकर कर्त्तव्य कहलायेगा। असहाय एवं निर्धन लोगों की निष्काम सेवा करने से मन को शांति मिलती है और तनाव दूर होता है।

(3) **सेवा में समता** :– हमें मानव मात्र की सेवा बिना किसी भेदभाव से करनी चाहिये तभी उसमें समता की भावना आयेगी।

(4) **सेवा में ममता** :– हमें मानव मात्र की सेवा उसी प्रकार करनी चाहिये जैसे एक माँ अपने बच्चों की करती है तभी उसमें ममता की भावना आयेगी।

(5) **सेवा में क्षमता** :– इसका भाव यह है कि व्यक्ति को सेवा अपनी क्षमता के अनुसार करनी चाहिए न ही क्षमता से अधिक न ही कम।

(6) **सेवा में अनुकूलता** :– इसका भाव यह है कि प्रत्येक दूसरे व्यक्ति की सेवा उसकी परिस्थितियों के अनुसार करनी चाहिये जबरदस्ती नहीं। जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों में–

सेवा, संयम, साधना, सत्संग और स्वाध्याय।

दुःख में सुख को पायेगा जो इनको अपनायेगा।।

इसके विषय में मैं आपकी सेवा में एक दृष्टांत प्रस्तुत करना चाहता हूँ :–

उन दिनों स्वामी रामतीर्थ अमेरिका में थे। अपने वेदांत संबंधी प्रवचनों से उन्होंने अमरीकावासियों का मन मोह लिया था। एक दिन स्वामी जी के पास एक महिला आई। वह बहुत दुःखी दिखाई दे रही थी।

उसने स्वामी रामतीर्थ जी से कहा, ''स्वामी जी, मैं बहुत दुःखी हूँ, जब से मेरा एकमात्र पुत्र इस संसार से बीमारी के कारण चल बसा है, मेरा मन उदास हो गया है। किसी काम में मेरा मन नहीं लगता। मैं काफी हताश हो गई हूँ। आप कृपा करके मुझे कोई उपाय बताइये। क्या मुझे कभी आनंद मिलेगा?''

स्वामी जी ने कहा, ''बहन! राम आनंद अवश्य बेचता है, पर उसका मूल्य अदा करना पड़ता है। आनंद मुफ्त में तो नहीं मिलता।''

इस पर अमेरिकन महिला ने कहा, ''आप जितनी कीमत चाहें, मैं देने को तैयार हूँ। पैसे की मेरे पास कोई कमी नहीं है। कहिए, क्या कीमत देनी होगी?''

स्वामी रामतीर्थ ने तब मुस्कराकर कहा, ''बहन! आनंद के साम्राज्य में दुनियाँ के सिक्के नहीं चलते, तुम्हें तो राम की दुनियाँ में चलने वाले सिक्कों में इसका मूल्य अदा करना होगा। बोलो तैयार हो?''

महिला ने व्याकुल होकर कहा, ''आप जो चाहें, देने को तैयार हूँ, आप कहिए तो सही।''

यह सुन कर स्वामी जी ने एक अनाथ हब्शी बच्चे को अपने पास बुलाया और उसे महिला को सौंपते हुए कहा, ''अच्छा, यह लो अपना पुत्र! इस अनाथ बच्चे को अपना बच्चा समझ कर पालना।''

यह बात सुनकर महिला बोली, ''स्वामी जी! यह काम तो बड़ा कठिन है, मुझसे कैसे होगा?''

इस पर स्वामी जी बोले, ''तो फिर तुम्हें सच्चा आनंद मिलना भी कठिन है।'' अंत में महिला ने बच्चा स्वीकार कर लिया। वह उसका पुत्रवत् पालनपोषण करने लगी।

थोड़े दिनों बाद वह वापस स्वामी जी के पास आई और बोली, ''स्वामी जी, अब मैं वास्तव में सुखी हूँ। आनंद की अनुभूति लेती हूँ। सच है, निर्धन तथा अनाथों की सेवा में ही सच्चा आनंद है।''

10. मृत्यु के बाद क्या–क्या साथ जाता है?

संवेदना हृदय में न होती, हृदय पाषाण हो गया होता।
कंठ में मधुरता न होती, शब्द नाकाम हो गया होता।।
वासना प्रेम में न होती, प्रेम वरदान हो गया होता।
याचना भक्त में न होती, भक्त भगवान् हो गया होता।।

हाथों खाली यहाँ से सिकन्दर गया।
सब ख़ज़ानों की चाबी धरी रह गयी।।
बैद्य लुक़मान को भी क़ज़ा खा गयी।
ज़िन्दगानी का कोई भरोसा नहीं।।

संसार में जब कोई व्यक्ति मरता है तो धन, संतति, पद–प्रतिष्ठा आदि यही छोड़कर चला जाता है। लोग बहुदा कहते हैं कि व्यक्ति के साथ कुछ भी नहीं जाता और उसे यहाँ से खाली हाथ जाना पड़ता है। यहाँ तक कि गुरु नानक देव जी ने लिखा है कि कोई व्यक्ति अपने साथ सूई तक नहीं ले जा सकता। जैसे आचार्य श्री सुदर्शन जी लिखते हैं :–

कितना भी धन संग्रह करलो,
मन में शांति नहीं होती।
भर लो हीरा मोती घर में,
किसी कफ़न के जेब नहीं होती।।

–संगीतमय राम कथा (उत्तर काण्ड पृ. 715)

हाँ यह सत्य है कि प्रत्यक्ष रूप से प्राणी के साथ कुछ भी नहीं जाता। परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से उसके साथ निम्नलिखित छः वस्तुएं जाती हैं :–

1. आत्मा :–स्थूल शरीर नाश्वान् है और आत्मा अजर, अमर और नित्य है। वह कभी नहीं मरती है। आत्मा की अमरता के विषय में ओशो लिखते हैं––

मंसूर के हाथ–पैर काटे गए और मंसूर हँसता रहा। और जब किसी ने पूछा कि तुम हँस रहे हो?तुम्हारे हाथ–पैर काटे जा रहे हैं तो मंसूर ने कहा अगर मुझे काटा जाता तो मैं रोता। लेकिन मुझे नहीं

काटा जा रहा है और जिसे तुम काट रहे हो नासमझो वह मैं नहीं हूँ और मैं तुम पर इसलिये हँस रहा हूँ।

—मैं मृत्यु सिखाता हूँ (बारहवाँ प्रवचन)

2. सूक्ष्म शरीर :— इसको विज्ञानमय कोश, अंगुष्ठ शरीर के नाम से भी पुकारा जाता है। यह हृदय के भीतर होता है। ध्यान के द्वारा इसमें प्रवेश करके ओम् का जाप करना चाहिए। यह दो मात्रा का जाप है। सूक्ष्म शरीर में निम्नलिखित घटक होते हैं जिनको पुरी के नाम से भी पुकारा जाता है।

(1) 5 कर्मेन्द्रियां — वाणी, हाथ, पैर, मलद्वार और मूत्राद्वार।

(2) 5 ज्ञानेन्द्रियां — आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा।

(3) 5 प्राण — प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान।

(4) मन।

(5) बुद्धि।

(6) अहंकार।

3. कारण शरीर :— इसको आनंदमय कोश, लिंग शरीर के नाम से भी पुकारा जाता है। यह सूक्ष्म शरीर के अंदर होता है। सूक्ष्म शरीर से आगे बढ़कर भक्त का ध्यान जब इस शरीर में पहुँचता है तब यह भी पता नहीं होता कि मैं जाप कर रहा हूँ या नहीं ऐसे जाप को अजपा जाप कहते हैं। इसमें बीज रूप से सारी वासनाएं रहती हैं। जैसे बीज से वृक्ष बन जाता है, गहरी नींद ही कारण शरीर की अवस्था है। जब आप इस अवस्था को पार कर जाते हैं तभी आप को दिव्यानंद मिलता है। इसमें कोई शेर सुनाई नहीं देता। इसमें बैठकर व्यक्ति चिन्तन करता है और स्थूल शरीर को भूल जाता है। इसमें व्यक्ति ख्यालों में खोजता है।

4. दान :— महाभारत के यक्ष—युधिष्ठिर सम्वाद में यक्ष ने युधिष्ठिर से पूछा महाराज जीते जी तो यहाँ सभी साथी हैं परन्तु मरने पर मानव का कौन सा साथी होता है——

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया——

दान मित्र मरिष्यंत

मरने वाले का मित्र दान होता है।

5. संस्कार :—संस्कार का अर्थ है कि किसी भी वस्तु के गुण, कर्म और स्वभाव में परिवर्तन करना। संस्कारों से शरीर की मानसिक, वाचिक एवं

आत्मिक उन्नति होती है। उसका प्रभाव सूक्ष्म शरीर पर पड़ता है। वही प्रभाव मृत्यु के उपरान्त अगले जन्म में साथ जाता है।

6. चरित्र और व्यवहार : व्यक्ति अपने चरित्र एवं व्यवहार से महान् बनता है जैसे स्वामी विवेकानंद जी ने लिखा है–

It is character and behaveor that pays everywhere.

चरित्र और व्यवहार ही प्रत्येक स्थान पर प्रभाव डालता है।

आज मर्यादा पुरुषोत्तम राम, योगिराज श्रीकृष्ण, महर्षि दयानंद, विवेकानंद अपने चरित्र और यश के कारण जीवित है। जैसे रामधारीसिंह 'दिनकर' लिखते हैं–

बड़े वंश से क्या होत है।
खोटे हों यदि काम।
नर का गुण उज्ज्वल चरित्र।
नहीं धन–धाम।। –रश्मि रथी

इसी प्रकार एक अन्य कवि ने लिखा है–

निर्धन धनवान से डरता है
निर्बल बलवान से डरता है
मूर्ख विद्यान् से डरता है
परन्तू चरित्रवान् से ये तीनों डरते हैं।

7. धर्म :–धर्म की शक्ति महान् है। इससे भी अधिक महान् वे व्यक्ति हैं जो वास्तविक धर्म का समझकर तदनुसार व्यवहार करते हैं। मनु महाराज ने मनुस्मृति में लिखा है––

एक एव सुहृद् धर्मो, निधनेऽप्यनयति यः।
शरीरेण समं नाशं, सर्वमान्यद्धि गच्छति।। –8.17

धर्म ही एक मात्र मित्र है जो मरने पर भी साथ जाता है शेष सब तो शरीर के साथ नष्ट हो जाता है–क्योंकि आत्मा अमर है और स्थूल शरीर नश्वर है।

धार्मिक व्यक्ति वह नहीं जो मंदिर, मस्जिद, गिरिजाघर, गुरुद्वारे में जाता है अपितु वह धार्मिक व्यक्ति है जो मानवता के कल्याण के लिये परोपकार के कार्य करता है जैसे एक हिन्दी कवि ने लिखा हैः–

धन धरा के बीच में सारा खड़ा रह जायेगा।
पशु भी बंधे रह जायेंगे जब कूच का दिन आयेगा।।
नारी घर के द्वार तक साथ देगी लोक में।
मित्रगण मरघट से आगे मुंह नहीं दिखलायेंगे।।
देह भी तेरी चिता में यूंही जल भुन जायेगी।
अंत में एक धर्म सच्चा तेरे साथ जायेगा।।

इसके विषय में महर्षि दयानंद से छोटे लाल ने पूछा–

जीव मर कर कहाँ जाता है?

महर्षि दयानंद जी ने यजुर्वेद के अनुसार उत्तर दिया–

जीव देह छोड़ने के अनन्तर वायु रूप होकर आकाश में रहता है। फिर जल में जाता है। उसके पश्चात् क्रमशः औषधियों में, अन्न में और पुरुष में होकर गर्भ में स्थान करता है और फिर समय पर जन्मता है।

उस समय महर्षि दयानंद ने स्वर्ग–नरक के मिथ्या विश्वास का खूब खण्डन किया। एक हिन्दी कवि कितना सुन्दर लिखता है :–

करले यत्न हज़ार, तोता उड़ जाना।
यह तोता है बड़ा अनौखा एक दिन देवे जरूरी धोखा।।
क्या सोते चादर तान तोता उड़ जाना।
इस तोते का नहीं ठिकाना इसने निकल जरूरी जाना।।
रो–रो हैरान तोता उड़ जाना।
जब पिंजड़े से उड़कर जावे पकड़ो कितना हाथ न आवे।।
लम्बी भरे उड़ान तोता उड़ जाना।
योगी जनों ने जोर लगाया, नहीं किसी के काबू पाया।।
हो गया सब बेकार तोता उड़ जाना।
इससे भाइयों ओ३म् उचारों ओ३म् नाम हृदय में धारो।
हो जाये बेड़ा पार तोता उड़ जाना।

11. स्वास्थ्य

पहला सुख निरोगी काया।
दूसरा सुख घर में माया।
तीसरा सुख सुशीला नारी।
चौथा सुख पुत्र आज्ञाकारी
पाँचवाँ सुख राज्य में पाशा (उपाधि)
छठवाँ सुख सुस्थान वासा (निवास स्थान)
सातवाँ सुख संतोषी वासा। (संतोषी मन)
आदमी का जिस्म क्या है, जिसपै शैदा (मोहित) है जहाँ।
एक मिट्टी की इमारत, एक मिट्टी का मकाँ।।
ख़ून तो गारा है इसमें, ईंटें इसमें हड्डियाँ।
चंद साँसों पर खड़ा है यह ख्याली आसमाँ।।
मौत की पुरजोर आँधी इससे जब टकरायेगी।
देख लेना यह इमारत खुद–ब–खुद गिर जाएगी।।

स्वास्थ्य शब्द की व्युत्पत्ति स्व+स्थ शब्दों से हुई है। स्व का अर्थ है आत्मा और स्थ का अर्थ स्थिति अर्थात् शरीर में आत्मा की सुन्दर, सुष्ठु, स्वस्थ स्थिति का नाम स्वास्थ्य है। अतः स्वस्थ व्यक्ति वह है जो मन, वचन एवं कर्म से शुद्ध है जो प्रत्येक अवस्था में प्रसन्न है जो काम को कर्त्तव्य समझकर करता है जिसकी पाचनशक्ति ठीक है, भूख प्राकृतिक है, नींद पूरी आती है, चेहरे एवं आँखों में चमक है एवं जिसका जीवन नियमबद्ध है। इसके विषय में विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने स्वास्थ्य की निम्नलिखित परिभाषा प्रस्तुत की है––

Health is a state of complete physical, mental, social and financial well being of an individual and not merely absence of disease or infirmity.

स्वास्थ्य का अर्थ है कि व्यक्ति शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आर्थिक रूप से ठीक हो, न केवल रोगों से मुक्ति या कमजोरी का नाम स्वास्थ्य नहीं है।

चाहे कुछ भी हो संसार का सर्वोत्तम सुख अच्छा स्वास्थ्य है। इसके बिना न तो व्यक्ति भौतिक सुख पा सकता है न आध्यात्मिक। अतः महर्षि चरक ने आयुर्वेद में सत्य ही लिखा है––

सर्वमन्यत् परित्यज्य शरीर मनुपालयेत।
तद्भावेहि भावनां सर्वभावः शरीरिणम्।।

—चरक संहिता निदान 617

संसार के सब कार्यों को छोड़कर सर्वप्रथम शरीर की देखभाल करनी चाहिए, क्योंकि इसके ठीक न रहने पर सब कुछ होता हुआ भी बेकार हो जाता है।

संसार के प्रत्येक व्यक्ति को स्वस्थ रहने में लिये निम्नलिखित पाँच बातें अपने जीवन में अवश्य अपनानी चाहिए—

1. प्रातः जागना, 2. व्यायाम एवं प्राणायाम, 3. सात्त्विक भोजन, 4. संयमित जीवन, 5. उषा जलपान, 6. प्रभुसमर्पण।

अच्छा स्वास्थ्य रखने के लिये एक उर्दूशायर कितना सुन्दर लिखा हैः—

आरज़मन्दाने सेहत याद रखे यह उसूल,
दस मिनट हर रोज़ टहलें, शाम को खाने के बाद।
पेट की मोटर में मसाले जो उड़ाते हैं, बहुत,
उनकी आँतें ठीक होती है, दही खाने के बाद।
ज़ायके और लज़्ज़तें, सब मुँह तलक महदूद हैं,
हो जाता है सब बराबर, पेट में जाने के बाद।
आंतों से लेना नहीं हरग़िज दांतों का काम,
होता है खाना खराब यूँ ही निगल जाने के बाद।
जो पकड़ सकते नहीं कसकर जवानी की लगाम,
बहुत पछतायेंगे दौरे—जवानी गुज़र जाने के बाद।
तन्दरुस्ती और खुशियाँ चाहने वालों सुनो,
सोना ग़लत है आपका सूरज निकल जाने के बाद।
जल्दी सोना, जल्दी उठना, घूमने जाना सुबह,
राज़ ए—सेहत है यही तर्जे—अमल आने के बाद।

12. संस्कार

संस्कारों का जीवन में अत्यधिक महत्व है। इसका शाब्दिक अर्थ है किसी भी वस्तु अथवा व्यक्ति के गुण, कर्म और स्वभाव में परिवर्तन करके उसको अत्यधिक उपयोगी बनाना। जैसे दांती और आरी को जब तेज करते हें तो दांती ढेरों घास काट देती है और आरी भी ढेरों लकड़ी काट देती है। इस प्रकार इनके गुणों की क्षमता बढ़ जाती है। महर्षिदयानन्द जी ने ''सत्यार्थप्रकाश'' में संस्कार की परिभाषा करते हुये लिखा है–

संस्कार उसको कहते हैं जिससे शरीर, मन और आत्मा उत्तम हो।

हम देखते हैं कि संस्कार व शिक्षा का अन्योन्याश्रित संबंध है। यदि संस्कार शिक्षा को महान् लक्ष्य की ओर ले जाते हैं तो शिक्षा संस्कारों की जननी है। यदि संस्कार व्यक्ति को सुसंस्कृत, सभ्य एवं परिष्कृत समाज एवं राष्ट्र के लिए उपयोगी हैं। जैसे हमारे पूर्वजों ने समाज को व्यवस्थित रखने के लिए वर्णव्यवस्था व आश्रमव्यवस्था स्थापित की थी। उसी प्रकार व्यक्ति में सुधार के लिये संस्कारों की व्यवस्था की थी। इन संस्कारों का व्यक्ति के स्वास्थ्य, उन्नति एवं भावी जीवन एवं समाज के निर्माण से सीधा संबंध है। इनकी आवश्यकता व उपयोगिता मानव के लिये अत्यधिक आवश्यक है। शिशु की प्रथम गुरु उसकी माता ही होती है। वही गर्भकाल से उसे संस्कार देना आरम्भ कर देती हैं इसके पश्चात् पिता एवं आचार्य ही संस्कार देते हैं तभी बच्चा संस्कारवान् बनता है। परन्तु आजकल शिक्षा के साथ बहुदा संस्कार नहीं दिये जाते क्योंकि आज की शिक्षा का मुख्योद्देश्य धनोपार्जन ही है। दूसरे अधिकतर माता–पिता एवं अध्यापक भी संस्कारवान् नहीं हैं। अतः माता–पिता एवं अध्यापकों को शिक्षा के साथ–साथ संस्कार भी देने चाहिए जिससे विद्यार्थी संस्कारवान् बन कर देश के लिये अधिक उपयोगी हो सके।

अतः संस्कारों के बिना मानव, मानव नहीं बन सकता। यह सर्वविदित है कि संखिया जैसे विष को संस्कारों की भावना देकर अमृततुल्य बना दिया जाता है। शेर को संस्कारों द्वारा बकरी के साथ एक घाट पर पानी पिला दिया

जाता है। ''गोपथब्राह्मण'' में 11 और ''मनुस्मृति'' में 14 संस्कारों का वर्णन है। परन्तु महर्षिदयानन्द जी ने **''संस्कार विधि''** में निम्नलिखित 16 संस्कारों का वर्णन किया है :–

1. गर्भाधान, 2. पुंसवन, 3. सीमन्तोन्नयन, 4. जातकर्म, 5. नामकरण, 6. निष्क्रमण, 7. अन्नप्राशन, 8. चूड़ाकर्म (मुण्डन), 9. कर्णवेध, 10. उपनयन, 11. वेदारम्भ, 12. समावर्त्तन, 13. विवाह (गृहाश्रम), 14. वानप्रस्थ, 15. संन्यास, 16. अंत्येष्टि।

परन्तु यह दारुण दुर्भाग्य का विषय है कि उपर्युक्त 16 संस्कारों में हमारे समाज में आज मुख्यतः तीन संस्कार – नामकरण, विवाह और अंत्येष्टि रह गये हैं। अतः मानव का इनके कारण ही समाज में पतन हो गया है।

संस्कार निम्नलिखित पाँच प्रकार के होते हैं :–

1. आत्मा के मूल संस्कार।

2. पूर्व जन्म के संस्कार।

3. माता–पिता के संस्कार।

4. सत्संग के संस्कार।

5. दृढ़ता के संस्कार।

13. वैराग्य

मरते सब कुछ छोड़ते, जीते ही तू छोड़।
सब से नाता तोड़कर, ईश्वर से तू जोड़।।

जब संसार के किसी भी व्यक्ति अथवा पदार्थ में न राग हो, न द्वेष हो और राग–द्वेष न होने का अहंकार भी न हो, तभी सच्चा वैराग्य होता है। वैराग्य निम्नलिखित चार स्थानों से पैदा होता है––

1. जब किसी व्यक्ति का शरीर छूटता है तो व्यक्ति सोचता है कि संसार झूठा है और परमात्मा ही सत्य है।

2. जब कोई व्यक्ति किसी भी रोगी को रोग की पीड़ा से चिल्लाते हुए किसी अस्पताल में देखता है वह डर से कांपने लगता है।

3. जब अपनी ही संतान कहना न मानकर मनमानी करे और व्यक्ति की उपेक्षा करे।

4. सत्संग सुनकर भी वैराग्य हो जाता है। सत्संग के प्रभाव से व्यक्ति सोचता है कि मैं कौन हूँ?कहाँ से आया हूँ और कहाँ जाना है?

वैराग्य का नशा सात्विक, अन्न का राजसी और शराब का तामसी होता है। व्यक्ति को निम्नलिखित चार प्रकार का वैराग्य होता है––

1. **मसानिया वैराग्य** :–जब कोई किसी भी परिवार का व्यक्ति मर जाता है तो उसे उसके संबंधी और मित्र शमशान में दाहसंस्कार के लिये ले जाते हैं। वे जब मुर्दे को जलता हुआ देखते हैं तो विचार करते हैं कि संसार नश्वर है, अतः एक दिन सबको इसी प्रकार मरना पड़ेगा।

2. धक्का वैराग्य :–जब कभी किसी गृहस्थी का अपनी पत्नी या बच्चों से झगड़ा हो जाता है और वे उसका अपमान करते हैं तो वह किसी तीर्थस्थान जैसे हरिद्वार, काशी, मथुरा, वृंदावन आदि स्थानों पर संतोष एवं शांति के लिए चला जाता है।

3. वैराग्य :–व्यक्ति वैरागी तो तब होता है जब सांसारिक पदार्थों का

मूल्य तो समझता है परन्तु उसके हृदय में इनकी इच्छा नहीं होती। जैसे बुल्लेशाह ने लिखा है——

चाह चूड़ी चाह चमारी चाह नीचों की नीच।

बुल्लेशाह तू ख़ुदा था अगर न होती यह बीच।।

4. सर्वोत्तम वैराग्य :—ऐसे वैरागी व्यक्ति को न तो सांसारिक पदार्थों का मूल्य होता न उनकी चाह होती है। जैसे कबीर जी के शब्दों में—

चाह गई चिन्ता मिटी मनुआ बेपरवाह।

जाको कछू न चाहिए, सोई सहनसाह।।

14. अभिमान

अभिमान भक्ति में बहुत बड़ी बाधा है। क्योंकि जहाँ अभिमान होता है वहाँ भगवान् नहीं होते; जहाँ ग़रूर होता है वहाँ हजूर नहीं होते; जहाँ, तक़रार होता है वहाँ करतार नहीं होते; जहाँ अहंकार होता है वहाँ ओंकार नहीं होते। फिर आप किस बात का अभिमान करते हो क्योंकि धन में आप कुबेर नहीं हो; सौंदर्य में आप कामदेव नहीं हो; विद्वत्ता में आप बृहस्पति नहीं हो; ऐश्वर्य में आप इन्द्र नहीं हो और प्रतिष्ठा में आप गणेश नहीं हो। जहाँ मैं–मैं होती है, वहाँ तू–तू नहीं होती क्योंकि जितना–जितना मेरा और मैं बढ़ेगा, उतना–उतना तू और तेरा–तेरा घटेगा। अभिमानी व्यक्ति को कोई भी व्यक्ति और शक्ति अपने से बड़ी नहीं लगती। व्यक्ति को जितना अभिमान होगा वह उतना ही प्रभु से दूर रहेगा और जितना निरअभिमानी होगा उतना ही प्रभु के निकट रहेगा और उसका उतना ही अधिक प्रभुसमर्पण होगा।

अभिमान निम्नलिखित आठ प्रकार का होता है– 1. मैं ठीक हूँ, 2. आप ग़लत हैं, 3. मैं संग्रह करूँ, 4. आप संग्रह न करें, 5. मैं आप पर शासन करूं, 6. आप मुझ पर शासन न करें, 7. मैं न्यायसंगत हूँ, 8. आप न्यायसंगत नहीं हैं।

अभिमान के मुख्य निम्नलिखित 7 कारण होते हैं–1 वंश, 2. शारीरिक बल, 3. सौंदर्य एवं यौवन, 4. स्वजन, 5. धन, 6. सत्ता, 7. ज्ञान।

ये सब वस्तुएं क्षणभंगुर एवं नाशवान् हैं। अतः इन के लिये अभिमान नहीं करना चाहिये क्योंकि अभिमान प्रभु मिलन में बाधा है। जैसे कबीर के शब्दों में––

जब मैं था तब हरि नहीं अब हरि है मैं नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी तामे दो न समाहि।।

इसी प्रकार एक हिन्दी कवि ने लिखा है––

काम गया ध्यान आया।
क्रोध गया ज्ञान आया।
लोभ गया इमान आया।
मोह गया विराम आया।
अभिमान गया भगवान् आया।

निष्कर्षतः इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि किसी भी व्यक्ति को किसी भी वस्तु का कभी भी अभिमान नहीं करना चाहिए क्योंकि अभिमानी व्यक्ति का कोई भी व्यक्ति आदर नहीं करता। वह एक फुटबाल की भाँति होता है जिनको चारों ओर से ठोकरें पड़ती हैं। अभिमान को नियंत्रित करने के मुख्य उपाय निम्नलिखित हैं :–

1. विनम्रता।
2. ऊँची स्थिति वालों को देखना।
3. अपने समान अन्य व्यक्तियों को देखना।
4. नश्वर वस्तुएं।

यदि अभिमान नहीं रहता तो हर आदमी में ख़ुदा नज़र आने लगता है। जैसे ''अहम्'' नामक नज़्म में एक उर्दूशायर ने कितना सुन्दर लिखा है :––

छोड़ा है जब से अहम् कुछ–कुछ नज़र आने लगा है।
अब तो हर शख्स में तू नज़र आने लगा है।।
तेरी बंदगी में इस कदर खो गया हूँ।
ज़र्रे ज़र्रे में तू नज़र आने लगा है।।
अहम् आदमी को ख़ुदा से तोड़ता है।
जहाँ में कोई रिश्ता नहीं जिसे यह जोड़ता है।।
न जाने लोग उम्र भर क्यों इसको पालते हैं।
यह तो दिलों को दिलों से मोड़ता है।।
तू खुदी को छोड़ दे तू भी ख़ुदा हो जायेगा।
तेरे जीने और मरने का हक अदा हो जायेगा।।
मस्त रहना सीख ले जो ख़ुदा के नाम में।
जो न उतरेगा कभी ऐसा नशा हो जायेगा।।
अपने मन को साफ रखना जो भी मानव सीख ले।
देखते ही देखते क्या से क्या हो जायेगा।।
अगर तू खुद को भूलकर ख़ुदा का हो जायेगा।
देखते ही देखते तू देवता हो जायेगा।।
तेरा शेवा अगर किसी के काम आ सके।
तेरे जीने का हक अदा हो जायेगा।।

15. वेद–प्रश्नोत्तरी

वेदों के अध्ययन, अनुशीलन, अनुसंधान, अन्वेषण, अभ्यास, अनुभव, निरीक्षण, समीक्षण, परीक्षण से प्रतीत होता है जैसे नदियों में गंगा, वृक्षों मे पीपल, पुरियों में काशी, तीर्थों में पुष्कर, दही में मक्खन और पशुओं में गाय सर्वश्रेष्ठ है। उसी प्रकार वेदों को भी संसार के विभिन्न विद्वानों एवं गिन्नीज़ बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड ने संसार के पुस्तकालय में प्राचीनतम एवं सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ घोषित किया है। अतः संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) के अधिकारियों ने विवेकपूर्ण निर्णय लेकर चारों वेदों को भारत से मंगवाकर अपने पुस्तकालय में मानव कल्याण के प्रथम ज्ञान– ग्रंथ के रूप में मान्यता के साथ सुसज्जित कराया है। इसके अतिरिक्त अमेरिकी संसद् में भी गायत्रीमंत्र का उच्चारण और शांतिपाठ की ध्वनि सारे संसार को सुनाई दी है। क्योंकि ये दोनों मंत्र सारे संसार के कल्याण की कामना, शांति तथा समृद्धि के सूचक हैं और इनमें किसी विशेष सम्प्रदाय का वर्णन नहीं है। जैसाकि महर्षि दयानन्द ने कहा था–

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है जो इस पर पूरा उतरे ले लो। शेष सब छोड़ दो। व्यर्थ के व्यामोह में न पड़ो।

वस्तुतः संसार का सारा ज्ञान सूक्ष्म रूप में वेदों में निहित है। वेद ही वह गंगोतरी है जहाँ से भारतीय संस्कृति की गंगा प्रवाहित होती है। वेद विविध बहुमूल्य विचार रूप रत्नों के रत्नाकर हैं। वेद ईश्वरीय ज्ञान है और मानव जाति का संविधान हैं। संसार में जो कुछ भी दृष्टिगोचर हो रहा है वह सब क्षणभंगुर एवं नाशवान् है। केवल परमात्मा, आत्मा, प्रकृति और वेदज्ञान ही अनादि हैं क्योंकि प्रलय के उपरांत भी वेदज्ञान सूक्ष्म रूप से परमात्मा में रहता है। अतः वेद ईश्वरीयज्ञान, शाश्वत, अजर एवं अमर है। इन में अनार्ष ग्रन्थों की भाँति मिलावट भी नहीं है। वेद विश्व धर्म है। अतः अज्ञान की काल रात्रि वेद सूर्य की पावन रश्मियों से ही मिटेगी। संसार की जलती हुई सम्पूर्ण समस्याओं का एक ही समाधान है। वह है वेदाचार एवं वेदप्रचार। इसलिए स्वामी विद्यानंद सरस्वती जी ने सत्य ही लिखा है–

वेद आर्य समाज की आत्मा है, उसके निकल जाने पर उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है।

—भूमिका भास्कर भाग—1 पृ. 93

इसी प्रकार पारसी फर्दून दादाचान लिखते हैं :—

The Veda is a book of knowledge and wisdom comprising the book of Nature, the book of Religion, the book of prayers, the book of morals and so on. The Word 'Veda' means Wit, Wisdom, knowledge and truly the Veda's is condensed Wit, wisdon and acknowledge.

—Philosophy of Zoroastrainism and comparative study of Religions p. 100.

वेद ज्ञान की पुस्तक है। जिसमें प्रकृति, धर्म, प्रार्थना, सदाचार आदि विषयक पुस्तकें सम्मिलित हैं। वेद का अर्थ ज्ञान है। वास्तव में, वेद में सारे ज्ञान—विज्ञान का तत्व भरा हुआ है। अतः एक हिन्दी कवि ने वेदों के विषय में कितना सुन्दर लिखा है :—

सारी सत्य विद्याओं का एक वेद भण्डार है।
पूर्ण ईश्वर ने दिया नियमों का इसमें सार है।।
पूर्णतया परमात्मा का पूर्ण इसमें विज्ञान है।
हो परिवर्तन न इसमें ऐसा नित्य विज्ञान है।।
वेद प्रभु के आदेशों का सुन्दर मंगल गान है।
वेद ही ईश्वर की वाणी वेद विमल विज्ञान है।।
सुख शांति को पाने का केवल यही विधान है।
वेद के ही ज्ञान से संसार का कल्याण है।।

प्रश्न 1. चारों वेदों के क्या नाम हैं और इनका विषय क्या—क्या है?

उत्तर :— ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद चार वेद हैं। ऋग्वेद ज्ञानकाण्ड है। यजुर्वेद कर्मकाण्ड है। सामवेद उपासना काण्ड है और अथर्ववेद विज्ञान काण्ड है। इसलिए ऋग्वेद मस्तिष्क का वेद है। यजुर्वेद हाथों का वेद है। सामवेद हृदय का वेद है और अथर्ववेद उदर का वेद है।

स्वामी **विद्यानंद** ''विदेह'' लिखते हैं :–

ऋग्वेद ज्ञानवेद, यजुर्वेद साधनावेद, सामवेद गीतिवेद और अथर्ववेद योगवेद है।

–विदेहवाणी (दर्शन के अधिकारी पृ. 105)

प्रश्न 2. चारों वेदों के मंत्रों की संख्या कितनी है और सर्वप्रथम किन भारतीय विद्वानों ने क्रमशः वेदों का अनुवाद हिन्दी एवं अंग्रेज़ी भाषाओं में किया?

उत्तर :– चारों वेदों के मंत्रों की संख्या के विषय में विभिन्न विचार हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि किसी विद्वान् ने चार मंत्रों को एक ही मंत्र माना और किसी विद्वान् ने चार मंत्र माने। अतः मंत्रों की गणना के कारण ही मंत्रों की संख्या में अंतर पड़ गया। परन्तु वेदों में कोई भी विद्वान् मिलावट नहीं कर सका। महर्षि दयानन्द के मतानुसार वेदों में मंत्रों की संख्या का विवरण निम्नलिखित है :–

1.	**ऋग्वेद**	**10,589 मंत्र।**
2.	**यजुर्वेद**	**1,975 मंत्र।**
3.	**सामवेद**	**1,875 मंत्र।**
4.	**अथर्ववेद**	**5,977 मंत्र।**
	कुल जोड़	**20416 मंत्र।**

अतः महर्षि दयानंद का मत सर्वमान्य है। महर्षि दयानंद ने ही सर्वप्रथम वेदों का अनुवाद हिन्दी भाष्य में किया था। परंतु दुर्भाग्यवश वे केवल यजुर्वेद के 1975 और ऋग्वेद के 5,649 मंत्रों (6 मंडल, 62 सूक्त, 2 मंत्र) तक ही वेदों का भाष्य कर पाये थे। इस प्रकार उन्होंने 20,416 मंत्रों में से 7,624 मंत्रों का ही हिन्दी अनुवाद किया था और शेष 12,792 वेद मंत्रों का अनुवाद वे अकाल मृत्यु, के कारण नहीं कर पाये। शेष मंत्रों का अनुवाद अन्य विद्वानों ने किया। इसी प्रकार सर्वप्रथम डॉ. सत्यप्रकाश जी ने विदेशी लेखक ग्रिफ़िथ की भाँति अंग्रेज़ी में चारों वेदों का 23 विभिन्न खंडों में अनुवाद किया था।

प्रश्न 3. वेदों का सर्वश्रेष्ठ मंत्र कौन–सा है और क्यों?

उत्तर :– गायत्री मंत्र वेदों का सर्वश्रेष्ठ मंत्र है और इसको वेदों का सार कहा जाता है जोकि इस प्रकार है।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः।
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्।। –यजुर्वेद 36.3

हे प्रभु! आप सर्वरक्षक, प्राणाधार, सुखस्वरूप, दुःखनाशक, सत्चित् आनंदस्वरूप हैं। आप ही सृष्टि के उत्पादक, पालक, संहारक, वेदज्ञानदाता एवं कर्मफल दाता है। हम आपके प्रेरणादायक, शुद्धस्वरूप, वरणीय, परमपवित्र, दिव्यस्वरूप का हृदय मंदिर में ध्यान करते हैं। आप हमारी बुद्धियों को कृपया श्रेष्ठ मार्ग की ओर प्रेरित कीजिए।

पद्यानुवाद–

तूने हमें उत्पन्न किया पालन कर रहा है तू।
तुमसे ही पाते प्राण हम दुःखियों के कष्ट हरता है तू।।
तेरा महान् तेज है छाया हुआ सभी स्थान।
सृष्टि की वस्तु वस्तु में तू हो रहा है विद्यमान्।।
तेरा ही धरते ध्यान हम माँगते तेरी दया।
ईश्वर हमारी बुद्धि को श्रेष्ठ मार्ग पर चला।।

अब गायत्री मंत्र पर उर्दू नज़्म पेश की जाती है :–

पैदा किया है जिसने हमें कायनात में।
करता है परवरिश वो हमारी हयात में।।
उससे ही इस जहाँ में कामयावें–ज़िन्दगी।
करता है दूर मुश्किलें देहर में सबकी।।
दुनियाँ के ज़र्रे–ज़र्रे में जिसका ज़हूर है।
हर आँख का वो नूर दिल का सुरूर है।।
उसके ही नूर से चमक है अफ़ताब में।
ताबिदेगी है अयाँ महाताब में।।

आदल है वो रहीम मंमावाये नूर है।
जलतकदा में तीरंग़ी से कोसों दूर है।।
माता है मेहरबान कि पितरेशरीफ़ है।
वो आपदों का सच्चा रफ़ीक है।।
हम मांगते हैं उसके दर पे सिर्फ यह दुआ।
अक़्ले–सलीम वो करे हमें सदा अता।।
दुनियाँ में करें जो भी कोई नेक काम हो।
निष्काम हो दो काम रफाय–आम हो।।

—बलदेव सिंह ''अज़ीज''

अब प्रश्न उठता है कि गायत्री मंत्र को वेदों का सर्वश्रेष्ठ मंत्र एवं सार क्यों कहा जाता है। इसका कारण यह है कि वेदों में केवल एक ही यह मंत्र है जिसमें ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना तीनों का एक साथ समन्वय हुआ है। स्तुति का अर्थ है ईश्वर के गुणों का चिन्तन करना ताकि उसमें मन लगा रहे। उपासना का अर्थ है ईश्वर में देर तक मन लगाकर ध्यान लगाना। प्रार्थना का अर्थ है ईश्वर का धन्यवाद करना और उसके मिलन की याचना करना ताकि अभिमान न रहे। क्योंकि स्तुति से प्रेम उत्पन्न होता है उपासना से भय का नाश होता है और प्रार्थना से अभिमान का नाश होता है। जैसे ''भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं'' में ईश्वर की स्तुति और ''भर्गो देवस्य धीमहि'' में ईश्वर की उपासना और ''धियो यो नः प्रचोदयात्'' में ईश्वर की प्रार्थना की गई है। इस प्रकार भक्ति के तीनों अंगों के लिये चारों वेदों में अकेला यही एक मंत्र है। वस्तुतः जैसे फूलों का सार मधु है, दूध का सार घी है, यज्ञ का सार सुगंधि है मानव जीवन का सार धर्म है उसी प्रकार वेदों का सार गायत्री मंत्र है। वस्तुतः गायत्री, गीता, गंगा, गाय और गुरु शुद्ध भारतीय संस्कृति के आधारभूत स्तंभ हैं।

प्रश्न 4. क्या वेदों का विभाजन महर्षि वेद व्यास ने किया था?

उत्तर :– नहीं। जैसे अथर्ववेद में लिखा है –

ऋचः सामानि च्छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः।।

—अथर्व 11.7.24

प्रस्तुत मंत्र में चारों वेदों के नाम एक साथ आये हैं। वे सिद्ध करते हैं कि चारों वेदों का ज्ञान एक साथ प्राप्त हुआ न कि क्रमिक व्यवस्था से। इससे यह स्पष्ट होता है कि वेदों का विभाजन महर्षि वेदव्यास ने नहीं किया अपितु प्रभु द्वारा ही किया गया था। जैसे महर्षि दयानंद ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में भी लिखा है –

जो सर्वशक्तिमान् परमेश्वर है उससे ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ये चारों उत्पन्न हुए हैं।

प्रश्न 5. (1) यज्ञ की आत्मा क्या है?
(2) यज्ञ के प्राण क्या हैं?
(3) यज्ञ का सार क्या है?
(4) यज्ञ के विभिन्न देवों का मुख क्या है?
(5) यज्ञ की सफलता क्या है?

उत्तर :– (1) यज्ञ की आत्मा स्वाहा है। इसका भाव है कि यथाशक्ति हर प्रकार का त्याग। स्वाहा शब्द स्व+आ+हा शब्दों से बना है। स्व का अर्थ है स्वयं, आ का अर्थ है सम्पूर्ण और हा का अर्थ है समर्पण। मैं तन, मन और धन से सम्पूर्ण समर्पण करता हूँ। यज्ञ में इस शब्द का बार–बार प्रयोग किया गया। आज आध्यात्मिक जगत् में भी समर्पण का अभाव है और वहाँ भी सौदेबाजी अधिक है।

(2) यज्ञ के प्राण इदन्न मम है। यह मेरे लिए नहीं है। यज्ञ में इस शब्द का बार बार प्रयोग किया गया है।

(3) यज्ञ का सार सुगंधि है जिससे चतुर्दिक सुगंधि फैले वही यज्ञ है जिससे दुर्गंध फैले वह यज्ञ नहीं है।

(4) यज्ञ के विभिन्न देवों का मुख अग्नि है।

(5) यज्ञ की सफलता दान है।

प्रश्न 6. वेदानुसार विधि–निषेध कौन–कौन से है?

उत्तर :– वेदानुसार निम्नलिखित 7 विधि–निषेध हैं।

विधि (मर्यादाएं)	निषेध (अमर्यादाएं)
1. सुविचार	1. चोरी करना
2. सुदृष्टि	2. व्यभिचार करना

3. सुश्रुति	3. शराब पीना
4. सुभावना	4. गर्भ में बच्चे को मारना
5. सुभाषण	5. विद्वानों की हत्य करना
6. संभक्षण	6. बुरे कामों को बार–बार करना
7. सुस्पर्श	7. पाप करके झूठ बोलना

प्रश्न 7. जगत् निर्माण के तीन कारण कौन–कौन से हैं?

उत्तर :– जगत् निर्माण के निम्नलिखित तीन कारण हैं–

1. निमित्त कारण (Efficient Cause) —

यह वह कारण होता है जिसके बनाने से कुछ बने, न बनाने से न बने। अतः इसका भाव यह स्पष्ट है कि जगत् को बनाने वाला परमात्मा जगत् निर्माता होने के कारण ही इसका निमित्त कारण है। जिस प्रकार कुम्हार घड़े को बनाने वाला होने के कारण घड़े का निमित्त कारण है।

2. साधारण कारण (Resultant Cause) —

यह वह कारण होता है जो बनाने में साधन हो। इसका भाव यह है कि जो बनाने में साधन एवं प्रयोजन हो। कुम्हार ने ग्राहकों के लिए घड़ा बनाया है। अतः ये दिशा, आकाश, प्रकाश, चाक आदि घड़े के साधारण कारण हैं।

3. उपादान कारण (Material Cause) —

उपादान कारण उसको कहते हैं जिसके बिना कुछ न बने। इसका भाव यह है कि जिसका ग्रहण ही उत्पन्न होने और कुछ बनाया जाये और जिसके बिना कुछ न हो। जैसे परमात्मा ने प्रकृति से जगत् को बनाया है अतः प्रकृति जगत् का उपादान कारण है।

अतः जगत् निर्माण के तीन कारणों से ही वेदों का त्रैतवाद का सिद्धांत यथार्थवादी है जिसके अनुसार परमात्मा, आत्मा एवं प्रकृति पृथक्–पृथक् सत्ताएं हैं जिनमें परमात्मा साक्षी है आत्मा पक्षी है और प्रकृति वृक्ष है। वस्तुतः आत्मा साधक है, प्रकृति साधन है और परमात्मा आनंदस्वरूप है। यजुर्वेद का 40वां अध्याय एवं ईशावस्योपनिषद् में इसी सिद्धांत का वर्णन है। जैसे :–

जिसने वस्तुओं को बनाया वह ईश्वर है।
जिससे वस्तुओं को बनाया वह प्रकृति है।
जिसके लिए बनाया वह जीव है।

–आचार्य चन्द्रशेखर

प्रश्न 8. वेदानुसार सृष्टि का काल कितना है और सृष्टि सृजन को कितने वर्ष व्यतीत हो चुके हैं?

उत्तर :– वेदानुसार सृष्टि का काल 4 अरब 32 करोड़ (4,32,00,00,000) वर्ष हैं और सृष्टि सृजन हुए 1,96,08,53,113 वर्ष हो चुके हैं। इस प्रकार अभी 2,35,91,46,887 वर्ष प्रलय होने का समय अभी शेष है। इसी प्रकार विभिन्न वैज्ञानिकों एवं इतिहासकारों ने भी वेदों की भाँति पृथ्वी की आयु लगभग 2 अरब वर्ष मानी है जिसका विवरण निम्नलिखित है :–

1. The age of the earth is about two thousand million years.

—Dr. William Rose
(outline of Modern knowledge P-152)

पृथ्वी की आयु लगभग 2 अरब वर्ष है।

2. Our globe must be about two thousand million years old and can in no case be much older.

—Lecomate Dunouy (Human Destiny P-48)

हमारी पृथ्वी लगभग 2 अरब पुरानी है और किसी भी अवस्था में इससे अधिक पुरानी नहीं।

3. Astronomers and mathematicians give us 200 million years of the age of the earth as a body separate from the sun.

—H.G. Well (outline of History P. 19)

ज्योतिषी एवं गणितज्ञ सूर्य से पृथक् हुई पृथ्वी की आयु लगभग 2 अरब वर्ष बताते हैं।

प्रश्न 9. आत्मा का मोक्ष काल कितने समय होता है?

उत्तर – सृष्टि का काल 4 अरब 32 करोड (4,32,00,00,000) वर्ष का है। यह ब्रह्मा का एक दिन है और इतने वर्षों की ब्रह्मा रात्रि होती है। इस प्रकार

आत्मा का मोक्षकाल $4,32,00,00,000 \times 2 \times 360 \times 100 =$ 31 नील, 10 खरब, 40 अरब वर्ष (31,10,40,00,00,00,000) तक आत्मा मुक्ति में रहती है। आत्मा का मोक्ष काल इस प्रकार समझा जा सकता है– $4,32,00,00,000 \times 2 \times 36000$ अर्थात् एक बार सृष्टि की उत्पत्ति एवं प्रलय में 8 अरब 64 करोड़ वर्ष समय लगता है इस प्रकार 36 हज़ार बार सृष्टि की उत्पत्ति एवं प्रलय में जितना समय लगता है। वह आत्मा मोक्ष काल होता है।

प्रश्न 10. कः स्विदेकाकी चरति काऽउ स्विज्जायते पुनः।
किᳬस्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत्।

–यजुर्वेद 23.45

(1) कौन अकेला चलता है?
(2) कौन बार–बार उत्पन्न होता है?
(3) हिम की औषधि क्या है?
(4) बीज बोने एवं काटने का बहुत बड़ा स्थान कौन–सा है?

उत्तर :– सूर्यऽएकाकी चरति, चन्द्रमा जायते पुनः।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत्।।

–यजुर्वेद 23.46

(1) सूर्य अकेला चलता है।
(2) चन्द्रमा बार–बार उत्पन्न होता है।
(3) आग हिम की औषधि है।
(4) भूमि बीज बोने और काटने का बहुत बड़ा स्थान है।

अतः एक हिन्दी कवि ने वेदों के विषय में कितना सुन्दर लिखा है–

पूर्ण वह परमात्मा सत्य ज्ञान का भण्डार है।
पूर्ण वेदों में किया सत्य धर्म का विस्तार है।।
जैसे दो और दो को मिलाने से चार बनता है।
इसी तरह वैदिक धर्म का सत्य ही आधार है।।

चारों वेदों के 10 अत्यन्त महत्वपूर्ण मंत्रों के अर्थ

ऋग्वेद

1. **ओ३म् अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।**
होतारं रत्नधातमम्।। —1.1.1
मैं उस प्रभु की जो कि संसार में अनादि, यज्ञप्रकाशक, सब ऋतुरचक, महादानी, रत्ननिर्माता, सब अग्रणीय नेता की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करता हूँ। वही मेरा एक मात्रा उपास्यदेव है।

2. **ओ३म् स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।**
पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि।। —5.51.15
हम सूर्य एवं चन्द्रमा के समान कल्याणकारी मार्ग का अनुसरण करें। इसके पश्चात् दानी, अहिंसक और ज्ञानी व्यक्तियों की संगति करें।

3. **ओ३म् विश्वदानीं सुमनसः स्याम**
पश्ये मनु सूर्यमुच्चरन्तम्।
तथाकरद्वसुपतिर्वसूनां देवाँ
ओहानोऽवसागमिष्ठः।। —6.52.5
हम सदा आनन्दित और प्रसन्न मन रहें और उदय होते सूर्य हो देखते रहें। ऐश्वर्यो का ऐश्वर्याधिपति देवों को प्राप्त कराने वाला रक्षण शक्ति के साथ आने वालों में सर्वश्रेष्ठ प्रभु वैसा करें।

4. **ओ३म् त्र्यंबकम् यजामहे सुगंधिम् पुष्टिवर्धनम्।**
उर्वारूकमिव बंधनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।। 7.59.11
तीनों कालों में एकरस रहने वाले परमात्मा की जो बलदाता और यशस्वी है, हम स्तुति करते हैं। हे प्रभु! जैसे पका हुआ ख़रबूजा लता से स्वयंमेव छूट जाता है वैसे हमें भी मृत्यु के बन्धनों से छुड़ाओ न कि अमृत्व से।

यजुर्वेद

5. **ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।**
यद्भद्रं तन्नऽआसुव।। —30.3
हे प्रभु! आप कृपया हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर

कर दीजिए और जो कल्याणकारी गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं वे हमें प्राप्त कराइए।

6. **ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य**
धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।। —36.3

हे प्रभु! आप सर्वरक्षक, प्राणाधार, सुखस्वरूप, दुःखनाशक, सत्–चित्–आनंद स्वरूप हैं। आप ही सृष्टि के उत्पादक, पालक, संहारक, वेदज्ञानदाता एवं कर्मफलदाता हैं। हम आपके प्रेरणादायक, शुद्धस्वरूप, वरणीय, परमपवित्र, दिव्यस्वरूप का हृदय मंदिर में ध्यान धरते हैं। आप हमारी बुद्धियों को श्रेष्ठ मार्ग की ओर में प्रेरित कीजिए।

7. **ओ३म् ईशा वास्यमिदँ्सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।**
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।

—40.1

इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी दिखाई दे रहा है, सभी कुछ ईश्वर से व्याप्त है। ईश्वर इस संसार के कण–कण में है। अतः प्रभुप्रदत्त प्रत्येक वस्तु का त्यागपूर्ण भोग करो और लालच मत करो। क्योंकि यह धन किसी का भी नहीं है।

8. **ओ३म् कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँ्समाः।**
एवं त्वयिनान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे। —40.2

इस संसार में निष्काम कर्मों को करते हुए मनुष्य सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करें। यही एक साधन है जिसके द्वारा तुम मनुष्य कर्म में लिप्त न होंगे। इसके अतिरिक्त और कोई भी उपाय नहीं है।

सामवेद

9. **ओ३म् यशो मा द्यावापृथिवी यशो मेन्द्रबृहस्पती।**
यशो भगस्य विन्दतु यशो मा प्रतिमुच्यताम्।
यशस्व्या३स्याः संसदोऽहंप्रवदिता स्याम्।। —611

मुझको द्युलोक, यश और भूमि यश, राजा विद्वान् ऐश्वर्य की कीर्ति प्राप्त हो। यश नहीं छूटे अपितु यश के कारण इस सभा का मैं प्रगल्भ वक्ता बन जाऊँ। हे प्रभो! आपकी कृपा से द्यु एवं पृथ्वी लोक हमारे यश के साधन बनें। राजा और विद्वान् मुझे कीर्ति प्राप्त करवायें। ऐश्वर्य का

यश भी हमें प्राप्त हो। यश मेरा साथ कभी न छोड़े। यश से युक्त मैं इस सभा का उत्तम वक्ता होऊँ। वेदानुशीलन से प्रतीत होता है कि इसमें प्रार्थना की गई है।

अथर्ववेद

10. **ओ३म् स्तुता मया वरदा वेदमाता**
प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं
ब्रह्मवर्चसम! मह्यं दत्त्वा व्रजत् ब्रह्मलोकम्। —19.71.1

मैंने वेदरूपी माता की गोद में बैठकर ज्ञान के रस का पान कर लिया है। यह वेदवाणी मनुष्यों को पवित्र करने वाली है। हे विद्वानों! मुझको अधोलिखित सात वरों को देकर मोक्ष को प्राप्त कीजिए–
1. पूर्ण जीवन, 2. जीवनशक्ति, 3. संतान, 4. गाय, बैल, घोड़ा आदि, 5. पशु, 6 धनधान्य, 7. आध्यात्मिक तेज।

16. उपनिषद्–प्रश्नोत्तरी

प्रश्न 1. उपनिषद् शब्द का क्या अर्थ है और महर्षि दयानंद ने किन–किन उपनिषदों को आर्ष उपनिषद् माना है?

उत्तर :– उपनिषद् शब्द की व्युत्पत्ति उप+नि+षद् शब्दों से हुई है। जिसका क्रमशः अर्थ है समीप+निष्ठापूर्वक श्रवण+ परमात्मा की प्राप्ति। अतः उपनिषद् का शाब्दिक अर्थ है परमात्मा की प्राप्ति के लिये निष्ठापूर्वक श्रवण करना और ज्ञानार्जन करना। महर्षि दयानंद ने निम्नलिखित 10 उपनिषदों को ही आर्ष उपनिषद् माना है :–

1. ईशावास्योनिषद्, 2. केनोपनिषद्, 3. कठोपनिषद्, 4. ऐतरेयोपनिषद्, 5. तैत्तिरीयोपनिषद्, 6. मुण्डकोपनिषद्, 7. माडूक्योपनिषद्, 8. प्रश्नोपनिषद्, 9. छंदोग्योपनिषद्, 10. बृहदारण्कोपनिषद्।

प्रश्न 2. उपनिषदों में सर्वश्रेष्ठ उपनिषद् कौन सी है और क्यों?

उत्तर :– सारे उपनिषदों में ईशावस्योपनिषद् को सर्वश्रेष्ठ उपनिषद् माना गया है क्योंकि इसमें परमात्मा व जगत् के स्वरूप, मानव के कर्त्तव्यों, संसाार में जीने की कला, विद्या व अविद्या, भौतिक एवं आध्यात्मिक सुख कैसे उपलब्ध किया जा सकता है आदि का उल्लेख किया गया है। वस्तुतः इसमें अध्यात्म का निरूपण बड़े मार्मिक एवं रोचक ढंग से किया गया है। यहाँ तक कि विद्वानों का विचार है कि यदि कभी हमारा समग्र आध्यात्मिक साहित्य नष्ट भी हो जाये, परन्तु इस उपनिषद् के प्रथम 2 मंत्र भी हमारे पास सुरक्षित रह जायें तो भी हम समूचे अध्यात्म का भवन पुनः खड़ा कर सकते हैं। वस्तुतः सारी उपनिषदें इस उपनिषद् के प्रथम मंत्र की व्याख्या है।

प्रश्न 3. उद्दालक ऋषि के पुत्र नचिकेता ने यमराज से कौन–कौन से तीन वर मांगे थे?

उत्तर :– नचिकेता ने यमराज से निम्नलिखित 3 वर मांगे थे।

(1) जब वह वापिस अपने पिता के पास मृत्यलोक में जायें तो पिता उसे पहचान ले और उसका क्रोध उस पर बिल्कुल भी रहे।

(2) दूसरे वर में उसने यज्ञ में अग्नि चयन की विधि पूछ ली। जहाँ पर हवन होगा वहाँ पर सुख शान्ति एवं आनंद होगा।

(3) तीसरे वर में उसने गूढ़त्तम आत्मविद्या प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की।

प्रश्न 4. प्रश्नोपदिषद् को प्रश्नोपनिषद् क्यों कहा जाता है? इसके जिज्ञासु ऋषि कौन–कौन थे और ये किस उद्देश्य के लिए पिप्लाद ऋषि के पास गये थे। पिप्पलाद शब्द का क्या अर्थ है?

उत्तर :– इस उपनिषद् को प्रश्नोपनिषद् इसलिये कहा जाता है कि इसमें छः ऋषियों ने पिप्पलाद ऋषि से छः प्रश्न पूछे थे। उन छः ऋषियों के नाम निम्नलिखित हैं–

1. सुरेशा, 2. कबधी, 3. कौशल्य, 4. गार्ग्य मुनि, 5. वैदभि, 6. सत्यकाम।

पिप्पलाद शब्द का अर्थ है जो पिप्पल की कलियां खा कर ही गुजारा करता हो।

प्रश्न 5. पाँच प्राण शरीर में कहाँ–कहाँ रहते हैं और सोलह कलाएँ कौन–कौन सी हैं?

उत्तर :– शरीर में पाँच प्राण निम्नलिखित स्थानों पर रहते हैं :–

1. हृदय में प्राण, 2. गुदा में अपान, 3. नाभि में समान, 4. नाड़ियों में व्यान, 5. सुषुम्ना नाड़ी में उदान रहते हैं।

सोलह कलाएं निम्नलिखित हैं–

1. प्राण, 2. श्रद्धा, 3. पृथिवी, 4. जल, 5. वायु, 6. आकाश, 7. ज्योति, 8. इन्द्रिय, 9. मन, 10. अन्न, 11. मंत्र, 12. तप, 13. वीर्य, 14. लोक, 15. कर्म, 16. नाम।

प्रश्न 6. अपरा विद्या (Scientific knowledge), पराविद्या (Spiritual knowledge), निषेधात्मक आनंद (Negative Bliss) और निश्चात्मक आनंद (Positive Bliss) में क्या अन्तर है?

उत्तर :– अपरा विद्या में वेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद एवं ज्योतिष का ज्ञान आता है और परा विद्या में अक्षर ब्रह्म का ज्ञान या अध्यात्म विद्या आती है। जो व्यक्ति को सुषुप्ति में शरीर और आत्मा के संबंध के टूटने से आनंद की अनुभूति होती है वह तो निषेधात्मक आनंद (Negative Bliss) है। परन्तु जब आत्मा शरीर में रहता हुआ शरीर से अलग होकर परमात्मा के साथ संबंध स्थापित करता है तो उसे निश्चयात्मक आनंद (Positive Bliss) की अनुभूति होती है। यही ब्रह्मानंद है।

प्रश्न 7. वरुण ने अपने पुत्र भृगु को आनंद के विषय में क्या उपदेश दिया था?

उत्तर :– आनंद, अन्न, प्राण, मन, विज्ञान (आत्मा) में नहीं है। अपितु आनंद और परमात्मा अथवा ब्रह्म पयार्यवाची शब्द है। अतः आनंद ही ब्रह्म है।

प्रश्न 8. तत्वमसि का क्या अर्थ है?

उत्तर :– तत्वमसि का अर्थ है तू वह है। तेरा आत्मतत्व ही सत् है न कि तेरा शरीर। यह उपदेश अरुण ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को दिया था।

प्रश्न 9. महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपनी पत्नी मैत्रेयी को क्या आत्मोपदेश दिया था?

उत्तर :– महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपनी पत्नी मैत्रेयी को आत्मोपदेश देते हुए कहा था अपनी आत्मा की कामना के लिए ही धन, पति, पत्नी, पुत्र, भाई, बहन आदि प्रिय होते हैं। वह आत्मा हो तो दृष्टव्य, श्रोतव्य, मन्तव्य और निदिध्यासितव्य है। उसी को देख सुन जान और उसका ध्यान कर। ऐसा करने से ही सब गांठे खुल जाती हैं। अतः

आत्मा को जानो...... आत्मा को जानो। वस्तुतः प्यार तभी तक रहता है जब तक एक–दूसरे को प्यार करते होते तो आज तक कभी भी कोई पिता अपने पुत्र को घर से निकालकर अपनी सम्पत्ति आदि से वंचित न करता अथवा पुत्र अपने पिता को घर से न निकालता। इसी प्रकार किसी भी पति पत्नी में तलाक़ को लेकर अलग होने की भावना उत्पन्न न होती। अतः हम किसी को भी तभी तक प्रेम करते हैं, जब तक हमारी आत्मा को वह संतुष्ट करता रहता है, ज्यों ही हमारी आत्मा को दुःखी करता है तो हम उससे छुटकारा पाने के लिए तैयार हो जाते हैं। वस्तुतः जब हम एक दूसरे से प्रेम कर रहे होते हैं तो हम अपनी आत्मा से प्रेम कर रहे होते हैं।

प्रश्न 10. महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपनी पत्नी मैत्रेयी को ब्रह्मविद्या या मधुविद्या का क्या उपदेश दिया था?

उत्तर :– महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपनी पत्नी मैत्रेयी को ब्रह्मविद्या का उपदेश देते हुए कहा था कि पति के प्रयोजन के लिए पति प्रिय नहीं होता अपितु अपनी आत्मा के प्रयोजन के लिए ही वह प्रिय होता है। स्त्री के प्रयोजन के लिये स्त्री प्रिय होती है। अतः प्रत्येक वस्तु अपने ही प्रयोजन के लिये प्रिय लगती है। अतः संसार का कोई भी व्यक्ति किसी भी व्यक्ति के लिये कुछ भी नहीं कर सकता जब तक उसे ब्रह्मानंद की प्राप्ति न हो जाये। संसार के सब व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिये ही कार्य करते हैं। परन्तु परमात्मा एवं महापुरुष केवल दूसरों के कल्याण के लिये ही कार्य करते हैं। क्योंकि परमात्मा ही आनंद है और महापुरुष को आनंदानुभूति हो चुकी है।

उपनिषदों की महत्ता :–

उपनिषदें ऋषियों का उदात उत्तम एवं उज्ज्वल चिन्तन है। उनके अनुशीलन ने मेरे जीवन को सुखमय, शांतिमय एवं आनंदमय बनाकर मेरी कायाकल्प कर दी है। इसलिये मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि जिस व्यक्ति ने इनका अध्ययन मनन एवं आत्मसात् नहीं

किया उसने अपना जीवन व्यर्थ ही गंवा दिया। इसकी महत्ता पर प्रकाश डालते हुये जर्मनी के महान् दार्शनिक शौपाहार ने लिखा है :–

In the world there is no study so beneficial and so evaluating as that of the Upnishads. They are the productal the highest wisdom. It has been the solance of my life. It will remain the solance of my death. It is destined sooner or later to become the faith of people.

संसार में ऐसा कोई अध्ययन नहीं है जो उपनिषदों के समान उपयोगी तथा ऊँचा उठाने वाला हो, ये उच्चत्तम बुद्धि की उपज हैं। उसी से मुझे जीवन में शांति मिलेगी। एक न एक दिन उपनिषदों की शिक्षा ही मानव मात्र की शिक्षा का केन्द्र बनेगी।

निष्कर्षतः – एक वाक्य में इतना ही कहना काफी होगा कि वेद मंत्रों में जो पहेली बन गई वह उपनिषदों में सहेली बन गई। अतः उपनिषद् वैदिक साहित्य की अमूल्य निधि है और ये वेदों का सारामृत है।

विभिन्न आर्ष उपनिषदों के 10 अत्यन्त महत्वपूर्ण उद्धरण

ईशोवास्योपनिषद्

1. **अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।**
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठांते नम उक्तिं विधेम।। 18

हे प्रभु ! तुम सब प्रकार के कर्मों को जानते हो। अतः तुम हमें उन्नति के लिये ऐसे मार्ग से ले चलो जो सुपथ हो। जो कुटिल पाप मार्ग है उसे हमसे अंतरात्मा का युद्ध कराकर पृथक् करो। हम बार–बार तुम्हें नमस्कार करते हैं।

कठोपनिषद्

2. **अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषँ सिनीतः। तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते।।**

–दूसरी वल्ली–1

श्रेयमार्ग (आध्यात्मिक मार्ग) अन्य है, प्रेयमार्ग (भौतिक मार्ग) अन्य है। ये दोनो विभिन्न उद्देश्यों से आदमी को बांधते हैं। इनमें श्रेय को अपनाने वाले व्यक्ति का भला होता है और प्रेय को अपनाने वाला व्यक्ति अपने उद्देश्य से हट जाता है।

3. **आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।**
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।।

–तीसरी वल्ली–3

आत्मा रथी है, शरीर रूपी रथ का स्वामी है। शरीर एक रथ है, बुद्धि सारथि है और मन लगाम है।

मुण्डकोपनिषद्

4. **तत्रापरा, ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्यौतिषमिति। अथ परा, यया तदक्षरमधिगम्यते।।** –प्रथम मुण्डक–5

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष का ज्ञान अपरा विद्या (Scientific knowledge) है। परन्तु इसके विपरीत जिस विद्या से अक्षर ब्रह्म का ज्ञान हो वह परा (Spiritual knowledge) विद्या है।

5. **द्वा सुपर्णा सयुजा सखायः समानं वृक्षं परिषस्वजाते।**
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।

—तीसरा मुण्डक—1

दो पक्षी सुन्दर पंखों वाले हैं जोकि साथ—साथ एक वृक्ष की शाखा पर जुड़े हुए बैठे हैं और एक दूसरे के सखा भी हैं। वे एक ही वृक्ष को सब ओर से घेरे हुए हैं। उनमें से एक तो वृक्ष के फलों का स्वाद ले रहा है दूसरा बिना चखे सब कुछ देख रहा है। वस्तुतः आत्मा एवं परमात्मा ही दो पक्षी है प्रकृति ही वृक्ष है, परमात्मा प्रकृति में असक्त हुए बिना समूचे विश्व का द्रष्टा है।

तैत्तिरीयोपनिषद्

6. **आनंदो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनंदाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशांतीति।** —भृगुवल्ली (षष्ठ अनुवाक)

आनंद ब्रह्म है। आनंद से सब भूत उत्पन्न होते हैं। उत्पन्न होने के पश्चात् आनंद से ही जीवित रहते हैं अंत में आनंद में ही विलीन हो जाते हैं।

छांदोग्योपनिषद्

7. **या वै सा गायत्रीयं वाव सा येयं पृथिव्यस्याँ॒।**
हीदँ॒ सर्वं भूतं प्रतिष्ठितमेतामेव नातिशीयते।।2।।

—तीसरा प्रपाठक (12वां खण्ड)

गायत्री मानो पृथिवी ही है। जैसे पृथिवी में समूचा जगत् प्रतिष्ठित है, वह सुख की रक्षा करती है। कोई इसे लांघ नहीं सकता, इसी प्रकार गायत्री में उपासक की सब भावनाएं निहित हैं। वह उपासक की रक्षा करती है। इसे कोई लांघ नहीं सकता।

8. **सय एषोऽणिमैतदात्म्यमिद ँ् सर्वं तत्सत्य ँ्स आत्मा तत्वमसि श्वेतकेतो इति। भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति। तथा सोम्यति होवाच।।7।।** –षष्ठ प्रपाठक (8वां खण्ड)

वह परमदेवता सत् क्या है?वह स्थूल नहीं असीम है, सूक्ष्मतम है, यह सब स्थूल शरीर सत्य नहीं है, वही सत्य है, वह आत्मा है, हे श्वेतकेतु तत्वमसि तू अर्थात् तेरा आत्मा तत्त्व है। तू उसकी तरह सत् नहीं है। श्वेतकेतु ने कहा भगवन्। इस रहस्य को फिर समझाइये। पिता ने कहा तथास्तु।

बृहदारण्यकोपनिषद्

9. **भूतानि प्रियाणि भवन्ति। न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति। आत्मा वा अरे व अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रैय्यामनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेद ँ्सर्वं विदितम्।।5।।**

–दूसरा अध्याय (चौथा ब्राह्मण)

अपनी आत्मा की कामना के लिए भूत प्रिय होते हैं अरे! इस सब–कुछ की कामना के लिए सब प्रिय होता है और वह आत्मा ही तो द्रष्टव्य है श्रोतव्य है, मन्तव्य है, निदिध्यासितव्य है उसी को देख, उसको सुन, उसी को जान, उसी का ध्यान कर। अरे मैत्रेयी! आत्मा के ही देखने से सुनने से समझने से और जानने से सब गांठें खुल जाती हैं।

10. **एषां वै भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्याँ आपोऽपामोधय ओषधीनां पुष्पाणि पुष्पणां फलानि फलानां पुरुषः पुरुषस्य रेतः।।1।।** –छठा अध्याय (चौथा ब्राह्मण)

महाभूतों का रस पृथिवी है, पृथिवी का रस जल है, जलों का रस औषधि, औषधियों का रस पुष्प, पुष्पों का रस फल, फलों का रस पुरुष, पुरुष का रस वीर्य है।

17. रामायण–प्रश्नोत्तरी

विश्वविख्यात कवि तुलसीदास का संक्षिप्त जीवनपरिचय

यमुना तट पर बसा हुआ है छोटा सा एक गाम।
जन्म भूमि जो तुलसी की है राजा पुर है नाम।।
आत्माराम पिता थे जिनके माता जिनकी हुलसी।
उन्हीं भाग्यवानों के घर सौभाग्य बने थे तुलसी।।

बाँदा जिले के राजापुर ग्राम में आत्माराम दूवे नामक एक ब्राह्मण अपनी पत्नी हुलसी के साथ रहते थे। दोनों ही पति–पत्नी राम भक्त थे। 1497 ई. में इस दम्पति के घर 12 महीने गर्भ में रहने के पश्चात् एक अलौकिक बालक का जन्म हुआ। बालक के जन्म के समय मुख में 32 दाँत थे और वह रोया नहीं अपितु उसके मुख से राम निकला। इसी कारण उसका नाम रामबोला रख दिया गया। उसका डील–डौल पाँच वर्ष के बालक के समान था।

गंगा के तट पर सोरो में बाबा नरहरिदास का आश्रम था। कभी–कभी आत्माराम दूबे अपनी धर्मपत्नी हुलसी के साथ इसी आश्रम में कथा सुनने आया करते थे। एक दिन अचानक इस दम्पति को बहुत तेज बुख़ार चढ़ा और वे दोनों नरहरिदास के आश्रम में चले गये। काफी इलाज किया गया परन्तु सुबह दोनों की मृत्यु हो गई। इस प्रकार तुलसीदास अनाथ हो गये। उस समय तुलसीदास की आयु लगभग 5 वर्ष की थी। अनाथ होकर वे घर–घर भीख मांगते थे। कुत्ते की भाँति पतल चाटकर ही कभी–कभी संतोष करना पड़ता था और मस्जिद में सोते थे।

बाबा नरहरिदास इस बालक को अयोध्या अपने साथ ले गये। वहाँ पर ही उसका यज्ञोपवीत संस्कार कराया। इस बालक ने बिना सिखाये ही गायत्री मंत्र का उच्चारण कर दिया जिसे देखकर सब लोग चकित रह गये। बाबा नरहरिदास ने दीक्षा दी और इसका नाम तुलसी दास रखा। बालक की बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी और एक बार पाठ सुनकर उसे कण्ठस्थ हो जाता था। इसके बाद तुलसी दास ने बनारस में 15 वर्ष तक वेद–वेदांग का अध्ययन शेष सनातन जी की छत्र–छाया में किया। इस प्रकार तुलसी के दीक्षा गुरु

नरहरिदास और विद्यागुरु शेष सनातन जी थे।

काशी से विद्या प्राप्त करके तुलसी दास अपने गुरु के पास सोरो लौट गये। यहाँ पर तुलसी दास का दीनबन्धु पाठक की पुत्री रत्नावली से विवाह हो गया। वे अपनी पत्नी से अत्यधिक प्रेम करते थे। कहते हैं कि विवाह के दो वर्ष पश्चात् उन्हीं के यहाँ एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम तारापति रखा गया। परन्तु दुर्भाग्य से दो वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हो गई। इस कारण दम्पति शोक–सागर में डूब गये। एक दिन रत्नावली अपने भाई के साथ अपने मायके चली गई। जब इस बात का तुलसी दास को पता चला तो उन पर विपत्तियों का पहाड़ टूट गया। वे अपनी पत्नी रत्नावली को लेने सुसराल चल पड़े। जब रत्नावली को उनके आगमन का पता चला तो उसने तुलसी दास को फटकार लगाते हुए कहा :–

लाज न आवत आप को दौरे आएहुं साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को कहा कहो मैं नाथ।।
अस्थि चर्ममय देह मम तामें ऐसी प्रीति।
जो होती श्रीराम महँ होती न तो भवभीति।।

आप को शर्म नहीं जो पीछे–पीछे दौड़े चले आए। ऐसा भी क्या प्रेम हो गया। मेरे इस हाड़–मांस के शरीर से आपको जितना प्रेम है उतना प्रेम यदि राम के चरणों में होता तो आपको मोक्ष न मिल जाता। ये शब्द सुनकर तुलसी दास का हृदय ही बदल गया और रत्नावली ने पूछा–''कहाँ जा रहे हो।'' इस पर तुलसी ने उत्तर दिया–

उस राम के चरणों में जिससे प्रेम करने का उपदेश अभी–अभी तुमने मुझे दिया है।

रत्नावली ने कहा कि आप बुरा मान गये और हाथ पकड़ लिया और कहा–''मैं आपको नहीं जाने दूंगी। इस पर तुलसीदास ने उत्तर दिया :–

अब तुम मुझे नहीं रोक सकोगी। मेरी गृहस्थी आज पूरी हुई।

इस प्रकार इन शब्दों को सुनकर तुलसी दास का मोह भंग हो गया। उनका नारी प्रेम नारायण प्रेम में परिवर्तित हो गया। इसके उपरांत उन्होंने गृहस्थ का परित्याग करके साधु वेश धारण किया। 12 पुस्तकों की रचना की

जिनमें में से ''रामचरितमानस'', ''विनयपत्रिका'', ''दोहावली'', ''कवितावली'', ''गीतावली'' आदि मुख्य हैं। तुलसी दास जी की मृत्यु 1623 ई. में 126 वर्ष की आयु में हुई। कोई कहता है कि कोढ़ से उनकी मृत्यु हुई और कोई कहता है प्लेग के कारण हुई। उनकी मृत्यु चाहे किसी भी कारण से हुई हो। परन्तु वे अंतिम क्षण तक पूरे होश में रहे और राम नाम उनकी जीभ पर रहा। मृत्यु के कुछ समय पूर्व उन्होंने निम्नलिखित छंद कहा :—

राम नाम यश बारिन कै, भयहुं चाहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिए, अब ही तुलसी सौन।।

राम के नाम का यश बखान कर अब मैं चुप होना चाहता हूँ। तुलसी के मुख में अब तुलसी और गंगाजल डालो। इन शब्दों के साथ यह महापुरुष एवं विश्वविख्यात कवि सदा के लिये मौन हो गये। जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों में :—

सम्वत् सोलह सौ अस्सी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुकला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर।।

वस्तुतः तुलसी दास हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। अतः प्रसिद्ध इतिहासकार विंसेट स्मिथ ने लिखा है :—

वह कवि हिन्दी—कविता—कानन में सब से बड़ा वृक्ष है। वे अपने समय में भारत में सर्वश्रेष्ठ पुरुष थे। यहाँ तक कि उन्हें अकबर से बड़ा कहा जाता है।

रामायण–प्रश्नोत्तरी

प्रश्न 1. हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य कौन–सा है?

उत्तर :– तुलसी दास द्वारा लिखित ''रामचरितमानस'' हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। उन्होंने इसका श्रीगणेश श्रीराम की जन्मभूमि अयोध्या में रामनवमी के दिन मंगलवार तिथि 30.3.1574 ई. को किया और इसकी इति श्रीराम के विवाह के दिन 25.11.1576 ई. को कर दी। इस प्रकार इसके लिखने में 2 वर्ष, 7 मास और 26 दिन लगे। इसका श्रीगणेश ''वर्णामान'' और इति ''मानव'' शब्दों से हुई थी जिसका सार है कि सच्चा मानव कैसा होना चाहिये।

इसके 7 काण्ड हैं– 1. बालकाण्ड, 2. अयोध्याकाण्ड, 3. अरण्यकाण्ड, 4. किष्किंधाकाण्ड, 5. सुन्दरकाण्ड, 6 लंकाकाण्ड, 7. उत्तरकाण्ड। इसमें 16000 शब्दों एवं 72 भाषाओं का प्रयोग किया गया है। संसार के किसी भी कवि ने अपने ग्रंथों में इतनी शब्दावली और भाषाओं का प्रयोग नहीं किया है।

नोट – ''रामचरितमानस'' के अतिरिक्त रामायण पर निम्नलिखित मुख्य ग्रंथ लिखे गये हैं– 1. बाल्मीकि रामायण, 2. अध्यात्म रामायण, 3. अद्‌भुत रामायण, 4. आनंद रामायण, 5. रामचरित, 6. रामचंद्रिका, 7. बैरवेरामायण, 8. चप्पूरामायण, 9. राधेश्याम रामायण, 10. साकेत, 11. मानस–पीयूष (1 खंड से 7 खंड तक), 12. शुद्धरामायण, 14. सत्यरामायण, 15. वीररामायण, 16. श्री रामकथा गंगा, 17. संङ्गीतमय रामकथा, 18. रामायण भ्रांतियां और समाधान, 19. सम्पूर्ण रामायण, 20. मानसपीयूष, 21. रामकथा रसवाहिनी आदि।

इन सब ग्रंथों का तुलनात्मक अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि इनमें से केवल बाल्मीकिरामायण ही प्रामाणिक ग्रंथ है और ''रामचरितमानस'' हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोपरि ग्रंथ है। परन्तु फिर यह एक महाकाव्य न होकर एक पौराणिक ग्रंथ है। अतः ईश्वर प्रसाद ''प्रेम'' ने सत्य ही लिखा है :–

रामचरितमानस को उन्होंने इतिहास ग्रंथ के रूप में नहीं अपितु भक्तिग्रंथ या धर्मग्रंथ के रूप में प्रस्तुत किया है।

—मानस—पीयूष पृ. 99

प्रश्न 2. रामचरितमानस का कौनसा काण्ड सर्वश्रेष्ठ है और क्यों?

उत्तर :— अरण्यकाण्ड ''रामचरितमानस'' का सर्वश्रेष्ठ काण्ड है। क्योंकि इसमें श्रीराम ने लक्ष्मण को दिया गया ज्ञानोपदेश और शबरी को नवधा भक्ति का दिया हुआ उपदेश ही मुख्य है। इसके अतिरिक्त इसमें श्रीराम ने कुशलता एवं दूरदर्शिता का परिचय दिया क्योंकि उन्होंने समूचे राष्ट्र को जोड़ने का महान् कार्य किया। इस काण्ड में रावण द्वारा सीता—हरण हुआ और श्रीराम ने इस चुनौती को स्वीकार किया। स्थान—स्थान पर स्वयं जाकर राष्ट्र पर आई विपत्ति से लड़ने के लिए लोगों में राष्ट्रीयता की भावना का संचार करके उन्हें एकत्रित एवं तैयार किया। वस्तुतः ''रामचरितमानस'' में अरण्यकाण्ड का वास्तव में वही महत्व है जो महाभारत में ''गीता'' का और ''भागवतपुराण'' में 11वें स्कन्द का है।

प्रश्न 3. श्रीराम के बहनोई और बड़ी बहन का क्या नाम था?

उत्तर :— श्रीराम चंद्र जी के बहनोई का नाम श्रृंगी ऋषि और बड़ी बहन का नाम शांता था।

नोट — महाराजा दशरथ ने अपनी प्रतीज्ञा अनुसार अपनी पुत्री शांता को अंग देश के राजा रोमपाद एवं वर्षिणी की दत्तक पुत्री बना दिया क्योंकि वर्षिणी कौशल्या माता की बड़ी बहन निःसन्तान थी।

—सत्यरामायण पृ. 49—51

प्रश्न 4. रावण के पिता का क्या नाम था और उनकी कितनी रानियां थीं और उनके पुत्र व पुत्रियों के क्या—क्या नाम थे?

उत्तर :— रावण के पिता का नाम विश्रवा था और उनकी निम्नलिखित तीन रानियां थीं——

1. बिंदुमती — इसके पुत्र का नाम कुबेर था।
2. कैकसी — इसके पुत्रों का नाम रावण और कुम्भकर्ण था और पुत्री का नाम शूर्पणखा था।

3. राका – इसके पुत्र का नाम विभीषण और पुत्री का नाम त्रिजटा था।

प्रश्न 5. रावण के दस सिरों का क्या अर्थ है?

उत्तर :– रावण के दस सिर निम्नलिखित दस बुराइयों के प्रतीक थे– 1. क्रोध, 2. कपट, 3. क्रूरता, 4. कहर, 4 प्रतिकार, 6, अहंकार, 7. लोभ, 8. मोह, 9. वैर, 10. हठ।

इसके विषय में ''सत्यरामायण'' में लिखा है :–

रावण के दस शीश नहीं थे। परन्तु उसको दस मस्तिष्कों का बुद्धिबल प्राप्त था। इस तथ्य का संकेत वह दस शीशों का मुकुट पहन कर देता था उसके दस शीश, काम, क्रोध, लोभ, वासना, घमण्ड, केन्या, मानस, बुद्धि चित्त एवं अहंकार के परिचायक थे। –पृ. 395

कुछ विद्वानों का विचार है कि रावण 4 वेद 6 शास्त्र का प्रकांड पंडित था। अतः उनमें 10 सिरों के समान बुद्धि थीं परन्तु शुद्ध बुद्धि नहीं थी। इसी कारण उसे 10 सिरों वाला कहा जाता है।

प्रश्न 6. शूर्पणखा के नाक और कान किसने काटे थे और इसका क्या भाव है?

उत्तर :– यौवन की देहली पर खड़ी कामोन्मत रावण की विधवा और अद्वितीय सुन्दर छोटी बहन श्रीराम की मनोहर छवि पर मोहित हो चुकी थी। राम की हृष्ट–पुष्ट एवं सुगठित बदन की कांति उस राजकुमारी को अपनी ओर आकर्षित कर रही थी। कामदेव के वश में हुई उसकी सुन्दर देहसृष्टि कामाग्नि के आवेग में श्रीराम में लीन हो जाना चाहती थी। वह उनके भुजपाश में बंध जाने को उतावली हो रही थी। वह राम की मनोहर छवि और यौवन देखकर उन्हें अपने सौन्दर्य का पान कराती हुई समीप आकर बोली :–

श्रीमान! राक्षसों के लिए सुरक्षित इस वन में मनुष्य के वेश में योद्धाओं की भाँति अस्त्र–शस्त्र लिए निर्भय होकर घूमने वाले आप कौन हैं?और यहाँ किस उद्देश्य से आये हैं?

श्री राम ने उत्तर दिया–मेरी बहन! मैं सम्राट् दशरथ का पुत्र रघुवंशी राम हूँ जो अपने अनुज लक्ष्मण एवं पत्नी सीता के साथ अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए यहाँ निवास कर रहा हूँ। अब आप अपना परिचय देने की कृपा करें।

मेरा नाम शूर्पणखा है। मैं राक्षसराज रावण महाबली कुम्भकरण एवं विभीषण की अनुजा हूँ और खर–दूषण की भी मुँहबोली बहन हूँ। मेरे सभी बन्धु महान् योद्धा हैं और दक्षिणपथ के इस प्रदेश के नायक हैं। यह कहकर वह इच्छित कामना भरी दृष्टि से राम की ओर देखने लगी। मानो वह उनके द्वारा पहल किए जाने की प्रतीक्षा कर रही थी। राम अपने स्थान पर निश्चल बैठे रहे। शूर्पणखा बोली––हे सुकुमार! मैं आप की भार्या बनना चाहती हूँ। आइए हम दोनों गंधर्व विवाह कर पति–पत्नी बन जायें।

तब राम ने कहा––

हे सुमुखी ! मैं विवाहित हूँ, मेरी पत्नी सीता मेरे साथ है और उसके अतिरिक्त सारी स्त्री जाति मेरी माँ, बहन और बेटी के समान है।

अब वह लक्ष्मण की ओर फिरी क्योंकि वे भी सुदर्शन एवं युवा थे। उसने लक्ष्मण से भी वही बातें दोहरायी। लक्ष्मण ने इस प्रस्ताव का तर्कसंगत उत्तर दिया।

मैं तो राम का छोटा भाई और सेवक हूँ। आप रावण की बहन हैं। ऐसी अनुचित बातें आप को शोभा नहीं देती।

वह पुनः राम के निकट जाकर बोली :–

इस दुर्बल और शोभाविहीन अपनी पत्नी को त्याग दो अन्यथा मैं इसका वध कर दूँगी।

राम ने गम्भीर होकर लक्ष्मण से कहा :–

तात! तुम इस स्त्री को यहाँ से शीघ्र ले जाओ अन्यथा हमको यह हानि पहुँचा सकती है।

यह सुनते ही शूर्पणखा व्यग्र हो उठी और उसने राम के पास खड़ी मुस्कराती हुई सीता पर प्रहार कर दिया।

सीता को तत्काल उससे ऐसी कोई अपेक्षा नहीं थी। उसने तवरित गति से पूरी शक्ति लगाकर शूर्पणखा को पीछे की ओर धकेल दिया। सीता के धक्के से वह अपना संतुलन खो बैठी और बबूल के एक कांटेदार वृक्ष से टकराई जिससे उसके नाक एवं कानों पर आघात लगा और नासिका से रक्त बहने लगा।

यही लक्ष्मण और सीता द्वारा शूर्पणखा का नाक और कान काटना था। वस्तुतः ''नाक काटना'' और ''कान काटना'' यहाँ मुहावरे के रूप में प्रयुक्त हुआ है। जोकि अपमान का सूचक है।

—सत्यरामायण पृ. 307—308

प्रश्न 7. सीता हरण के मुख्य क्या कारण थे?

उत्तर :—
1. दशरथ के साथ रावण की स्थायी शत्रुता थी। उसने अनुभव किया था कि दशरथ के पिता अज के कारण ही उसके पिता विश्रवा को विशाल कौशल साम्राज्य से वंचित होना पड़ा था अन्यथा आज वह उसका स्वामी होता।
2. दशरथ ने अनेक बार असुरों के विरुद्ध युद्ध में इन्द्र की सहायता की जिसके कारण उसे उतनी ही बार पराजय का मुख देखना पड़ा था।
3. उसके सौतेले भाई कुबेर के प्रति प्रतिशोध की भावना।
4. वेदवती द्वारा उसका अपमान, अभिशाप और फिर आत्महत्या।
5. कुबेर के पुत्र नल कुबेर तथा उसकी पत्नी रम्भा द्वारा उसका अपमान।
6. अन्ततः परमप्रिय बहिन शूर्पणखा का अपमान।

——सत्य रामायण पृ. 323

प्रश्न 8. मेघनाद ने लक्ष्मण वध के लिए कौन–कौन से अस्त्रों का प्रयोग किया?

उत्तर :– मेघनाद ने लक्ष्मण के वध के लिए निम्नलिखित तीन अस्त्रों का प्रयोग किया था।

1. ब्रह्मास्त्र :–मेघनाद ने जब देखा कि लक्ष्मण भीषण बाणों का प्रहार कर रहा है तो उस समय उसने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया फिर ब्रह्मास्त्र लक्ष्मण की परिक्रमा करके वापिस चला गया।

2. पाशुपत अस्त्र – इसके उपरांत मेघनाद ने शिवजी द्वारा दिया हुआ पाशुपत अस्त्र का प्रयोग किया। वह भी लक्ष्मण जी के माथे को स्पर्श करके वापिस चला गया।

3. नारायण अस्त्र – अंत में मेघनाद ने नारायण अस्त्र का प्रयोग किया। वह भी लक्ष्मण के चारों ओर परिक्रमा करके वापिस चला गया।

प्रश्न 9. मरते समय रावण ने लक्ष्मण को क्या ज्ञान दिया था?

उत्तर जिस समय रावण मरणासन्न अवस्था में था, उस समय श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा कि इस संसार से नीति, राजनीति और शक्ति का महान् पंडित विदा ले रहा है, तुम उसके पास जाओ और उससे जीवन की कुछ ऐसी शिक्षा ले लो जो और कोई नहीं दे सकता। श्रीराम की बात मानकर लक्ष्मण मरणासन्न अवस्था में पड़े रावण के सिर के नजदीक जाकर खड़े हो गए।

रावण ने कुछ नहीं कहा। लक्ष्मण वापस राम के पास लौट आये। तब श्रीराम ने कहा कि यदि किसी से ज्ञान प्राप्त करना हो तो उसके चरणों के पास खड़े होना चाहिए न कि सिर की ओर। यह बात सुनकर लक्ष्मण जाकर रावण के पैरों की ओर खड़े हो गये। उस समय महापंडित रावण ने लक्ष्मण को 3 बातें बताईं जो जीवन में सफलता की कुंजी हैं।

(1) पहली बात जो रावण ने लक्ष्मण को बताई वह यह थी कि शुभ कार्य जितनी जल्दी हो कर डालना और अशुभ कार्य को जितना टाल सकते हो टाल देना चाहिए। मैं श्रीराम को पहचान न सका और उनकी शरण में आने में देरी कर दी। इसी कारण मेरी यह हालत हुई।

(2) दूसरी बात यह कि अपने शत्रु को अपने से कम शक्तिशाली नहीं समझना चाहिए, मैं यह भूल कर गया। मैंने जिन्हें साधारण वानर और भालू समझा उन्होंने मेरी पूरी सेना को नष्ट कर दिया। मैंने जब ब्रह्माजी से अमरता का वरदान मांगा था तब मनुष्य और वानर के अतिरिक्त कोई मेरा वध न कर सके ऐसा कहा था क्योंकि मैं मनुष्य और वानर को तुच्छ समझता था। मेरी यह गलती भी थी।

(3) रावण ने लक्ष्मण को तीसरी बात यह बताई कि सामान्यतः अपने जीवन का कोई राज हो तो उसे किसी को भी नहीं बताना चाहिए, यहाँ भी मैं चूक गया क्योंकि विभीषण मेरी मृत्यु का राज जानता था। यह मेरी जीवन की सबसे बड़ी भूल थी।

प्रश्न 10. श्रीराम की सेना ने कितने दिनों में कितना लम्बा पुल लंका पर चढ़ाई करने के लिए बांधा था और राम और रावण का युद्ध कितने दिनों तक चला था?

उत्तर :— श्रीराम की सेना ने 5 दिन में 100 योजन लम्बे पुल का निर्माण लंका पर चढ़ाई करने के लिये किया था। राम एवं रावण का 18 दिन तक युद्ध चला था। जैसे सत्य साई बाबा लिखते हैं——

राम—रावण युद्ध भी स्वयं में अतुलनीय युद्ध था।
अठारह दिन तक घमासान युद्ध चलता रहा। —रामकथा रसवाहिनी पृ. 614

नोट :—राम और रावण के युद्ध में अंतिम दिन राम ने रावण पर ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया और रावण ने उच्च ध्वनि से दोनों हाथों को उठाते हुए कहा था——

राम रुको, रुको! मुझे मत मारो, मैं तुम्हें तुम्हारी सीता वापस कर दूंगा।

परन्तु मरणासन्न रावण अशोक वाटिका की ओर दौड़ा ताकि वह अपनी मृत्यु से पूर्व सीता का वध कर सके और जिसके वियोग में रामजी मर जायें। परन्तु अशोक वाटिका के द्वार पर पहुँचते ही ब्रह्मास्त्र ने उसका सिर धड़ से अलग कर दिया और उसकी मृत्यु के अंतिम क्षण में उसके मुख से निकला ''हे राम!''

—सत्य रामायण पृ. 502

रामचरितमानस के 10 अत्यंत महत्त्वपूर्ण पद्यांशों की व्याख्या :–

1. **आकर चारि लाख चौरासी।**
जाति जीव जल थल नभ बासी।।
सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।। –बालकाण्ड 7(घ)–1

तुलसी दास जी कहते हैं कि इस संसार में अनन्त एवं असीम योनियों में चार प्रकार के जीव अण्डज, जरायुज, उद्भिज्ज एवं स्वेदज समूचे ब्रह्माण्ड में रहते हैं। उन सब से भरे हुए इस सारे संसार को सीताराममय जानकर मैं करबद्ध प्रणाम करता हूँ। वस्तुतः तुलसी दास जी मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के अनन्य एवं ज्ञानी भक्त थे। इसी कारण उन्हें संसार के कण–कण में सीता राम ही नज़र आते थे। क्योंकि जैसी किसी भी व्यक्ति की दृष्टि होती है वैसी ही उसकी सृष्टि होती है। इसी प्रकार गुरु रामदास जी ''श्रीगुरुग्रंथसाहिब'' में लिखते हैं :–

आपे अंडज जेरज सेतज उतभुज आपे
खंड आपे सभ लोइ।।
आपे सूतु आपे बहु मणीआ
करि सकती जगतु परोइ।।
आपे ही सूतधारु है पिआरा
सुतु खिंचे ढहि ढेरी होइ।।1।।
मेरे मन मैं हरि बिनु अबरु न कोइ।। –पृ. 605

अण्डज, जरायुज (पिण्डज) उद्भिज्ज एवं स्वेदज अर्थात् चार प्रकार के प्राणियों की उत्पत्ति हुई है। अण्डे से पैदा होने वाले जीव जैसे–मोर, कबूतर, चिड़िया, सर्प आदि को अण्डज कहते हैं। जेर से पैदा होने वाले जीव जैसे मानव, पशु, उद्भिज्ज पृथिवी से पैदा होने वाली वनस्पति जगत् जैसे वृक्ष, लता आदि एवं स्वेदज–मक्खी, मच्छर, कीटाणु आदि इन सब में परमात्मा स्वयं है। सारे संसार में वही परमात्मा है। जैसे मोतियों की माला में

एक धागा और उसमें पिरोए हुए मोती होते हैं। उसी प्रकार यह सारा संसार परमात्मा का ही है। स्वयं एक सूत के समान एवं उसमें पिरोए मोतियों के समान सूत भी वह ही मोती भी वह ही और स्वयं ही वो सूत्रधार है। अपनी खुशी से जब वह प्यारा अपनी शक्ति से सूत खींचता है तो सारी रचना ढह जाती है, मेरे मन में परमात्मा के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है। परमात्मा सर्वव्यापक है।

2. **बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।**
कर बिनु करम करइ बिधि नाना।।
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिनु बानी बकता बड़ जोगी।।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा।
ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा।।
असि सब भाँति अलौकिक करनी।
महिमा जासु जाइ नहिं बरनी।।

—(बालकाण्ड) 117.3.4

शिव पार्वती को उपदेश देते हुए कहते हैं कि वह परमात्मा निराकार है जैसे कि वेद में इसका निरुपण है। अतः वह प्रभु अपनी योगमाया की शक्ति के कारण बिना ही पांव के चलता है, बिना ही कान के सुनता है; बिना ही हाथ के अनेक प्रकार के कार्य करता है; बिना मुंह के सब रसों का आनंद लेता है और बिना ही वाणी के अत्यंत योग्य वक्ता है। वह तन के बिना ही स्पर्श करता है। बिना ही आँखों के देखता है एवं बिना ही नाक के सारे गंधों को सूंघता है। उसकी करनी सभी प्रकार से अलौकिक है और उसकी महिमा अकथनीय है। वस्तुतः तुलसीदास जी ने यहाँ पर परमेश्वर का निराकार रूप का निरूपण किया है क्योंकि सब का परमात्मा एक ही है और वह अनुभूति का विषय है क्योंकि परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं अपितु शक्ति है। जैसे यजुर्वेद में लिखा है—

ओ३म् ईशा वास्यमिदँ्सर्वत्किञ्च जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।।

—यजु. 40.1

इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी दिखाई दे रहा है सभी कुछ ईश्वर से व्याप्त है। ईश्वर इस संसार के कण—कण में है। अतः प्रभुप्रदत्त प्रत्येक वस्तु का त्यागपूर्ण भोग करो और लालच मत करो। क्योंकि यह धन किसी का भी नहीं है। परमात्मा सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ एवं अनन्त है। जैसे एक अंग्रेज़ी कवि के शब्दों में :—

No one can know thou,
No one can define thou,
No one can see thou,
But only true devotes can feel thou.

3. **रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरू बचनु ना जाई।**

—(अयोध्याकाण्ड) 27.2

जिस समय कैकयी राजा दशरथ द्वारा दिये गये दो वर मांगती है और राजा दशरथ कहते हैं कि दो न चार वर ले लो। उस समय राजा दशरथ कैकेयी से कहते हैं कि रघुकुल में यह प्रथा सदा से चली आई है कि रघुवंशी के प्राण भले ही चले जाएं परन्तु दिये हुये वचन को वह हर हालत में पूरा करता है। कहने का भाव यह है कि वह प्राण देकर भी दिये हुये वचन का निर्वाह करता है।

4. **सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि केहेउ मुनिनाथ।**
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ।।

—(अयोध्याकाण्ड) 171

जिस समय भरत जी ने अपने पिता राजा दश्रथ का दाह संस्कार कर दिया था। इसके बाद अन्य लोगों के साथ वसिष्ठ मुनि जी ने भरत और शत्रुघ्न को बुलाया और उन्होंने कहा कि दशरथ धर्म का पालन करते करते अपना शरीर त्याग गये और वे बात करते—करते शोक सागर में डूब गये। उस

समय वसिष्ठ मुनि दुःखी होकर भरत जी से कहते हैं——सुनो भरत! यह होनहार या भाग्य बड़ा बलवान होता है। हानि–लाभ, जीवन–मरण और यश–अपयश सब परमात्मा के हाथ में ही है न कि व्यक्ति के। कवि के कहने का भाव यह है कि इन पर व्यक्ति का कोई भी वश नहीं चलता। वस्तुतः व्यक्ति कर्म करने में तो स्वतंत्र है चाहे कोई शुभ कर्म करें या अशुभ कर्म करें। जैसे पाणिनी ने अष्टाध्यायी में लिखा है–स्वतंत्रः कर्त्ता। सृष्टिसृजन, सृष्टिपालन, सृष्टिविनाश और कर्मफल केवल अपनी ईश्वरीय न्यायव्यवस्था के अनुसार उसी के हाथ में हैं।

5. **करम प्रधान बिस्व करि राखा।**
जो जस करइ सो तस फलु चाखा।।

–(अयोध्याकाण्ड) 218.2

यह उस समय का प्रसंग है जब बृहस्पति इन्द्र से कहते हैं कि श्रीराम को अपना सेवक परमप्रिय है। वे अपने सेवक की सेवा से सुख मानते हैं और सेवक के साथ वैर करने से बड़ा भारी वैर मानते हैं। वस्तुतः परमात्मा सम है वह किसी से न प्रेम रखते हैं न रोष। इस संसार में कर्म ही प्रधान्य है जो जैसा करता है उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है। जैसे महाभारत एवं ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखा है :–

नाभुक्तं क्षीयते कर्मं कव्य कोटिशतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभं।।

बिना भोगे हुए कर्मों का नाश करोड़ों कल्प तक भी नहीं होता है। शुभ–अशुभ कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। इसके विषय में डॉ. श्रीराम आर्य अपनी पुस्तक **''गीताविवेचन''** में लिखते हैं–

श्री कृष्ण जी व राम को भी कृत कर्मों के फलस्वरूप घोर कष्ट मिले थे। कर्मों के बन्धन से वे भी मुक्त नहीं हो सके थे। जब वे स्वयं कर्मों के बंधन में फंसे हुए थे तो उनका दूसरों को बन्धन मुक्त करना, पापों को नष्ट करना, मोक्ष देने की घोषणा करना यह स्पष्ट धोखा देना नहीं तो और क्या है?

6. क्रोध मनोज लोभ मद माया।
छूटहिं सकल राम की दाया।।
सो नर इंद्रजाल नहिं भूला।
जा पर होइ सो नट अनूकूला।।
उमा कहउँ मैं अनुभव अपना।
सत हरि भजनु जगत सब सपना।।

–(अरण्यकाण्ड) 38(ख) 2.3

शिवजी पार्वती से कहते हैं कि श्रीराम गुणातीत हैं चराचर जगत् के स्वामी और सेवक के अंतःकरण को जानने वाले हैं। उन्होंने ही कामी लोगों की दीनता दिखलायी है और विवेकी पुरुषों के मन में वैराग्य को दृढ़ किया है। इस प्रकार आगे उपदेश देते हुए शिव कहते हैं कि हे पार्वती! काम, क्रोध, लोभ, मद और माया–ये सभी विकार प्रभुकृपा से ही छूटते हैं। वह नटराज प्रभु जिधर प्रसन्न होते हैं वह व्यक्ति मायाजाल में नहीं फंसता। हे उमा! मैं तुम्हें अपना अनुभव बतलाता हूँ कि प्रभु भजन ही सत्य है और यह सारा संसार तो स्वप्न की भाँति क्षणभंगुर है।

7. निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

–(सुन्दर काण्ड) 43.3

विभीषण जब अपने बड़े भाई रावण को छोड़कर श्रीराम की शरण में आना चाहता है। सुग्रीव, हनुमान आदि को उस पर शक होता है। जब सुग्रीव उसके आगमन की सूचना श्रीराम को देता है तो राम उसे अपनी शरण में आने की आज्ञा देते हैं। उस समय श्रीराम सुग्रीव को समझाते हुये कहते हैं कि यदि विभीषण के हृदय में पाप होगा तो वह उन्हीं के सामने नहीं आयेगा। यदि वह पापों का प्रायश्चित करना चाहता है तो उसे अवश्य अवसर प्रदान करना चाहिये। अतः उसे मेरी शरण में ले आइए।

उस समय श्रीराम सुग्रीव को उपदेश देते हुये कहते हैं कि सुग्रीव ने विभीषण को कपटी कहा था। परन्तु श्रीराम इसका खण्डन करते हुए कहते हैं कि मैं दुष्ट हृदय वाले व्यक्ति को नहीं प्राप्त होता क्योंकि मुझे कपट व

छल–छिद्र अच्छा नहीं लगता। अतः जो मनुष्य शुद्ध मन वाला होता है जिसके भाव एवं विचार निर्मल होते हैं वही मेरी कृपा प्राप्त कर मेरे दर्शनों को आता है। इसका दूसरा भाव यह भी है कि यदि कोई कपट व छल युक्त हो और फिर भी मेरी शरण में आ जाने से वह निर्मल हो जाता है। कवि के कहने का भाव यह है कि प्रभुमिलन के लिये हृदय की शुद्धता परमावश्यक है। यदि आपका हृदय शुद्ध होगा तो अहंकार भी नहीं रहेगा। जैसे कबीर के शब्दों में :–

कबीरा मन निर्मल भया जैसे गंगा नीर।
तब पाछै पाछै हरि फिरे कहे कबीर कबीर।।

8. **ईस्वर अंस जीव अबिनासी।**
चेतन अमल सहज सुखरासी।।
सो मायाबस भयउ गोसाईं।
बँध्यो कीर मरकट की नाईं।। –(उत्तरकाण्ड) 116(ख) 1.2

काकभुशुण्डि गरुड को उपदेश देते हुए कहते हैं कि सच्चे प्रभु भक्त पर मोह माया का कोई भी प्रभाव नहीं होता है। उसका श्रीराम के चरणों में सदा अविच्छिन्न प्रेम हो जाता है। आत्मा परमात्मा का अंश है और यह आत्मा अविनाशी, चेतन, स्वाभाविक, निर्मल एवं सुखराशि है परन्तु यह आत्मा तोते और बंदर की भाँति स्वयं मोहमाया के जाल में बंधी हुई है। यहाँ आत्मा की उपमा तोते एवं बंदर से की गई है। तोतों को पकड़ने के लिए बहेलिया पृथ्वी पर दो लकड़ियां गाडकर उन्हें एक नली से बांध देता है और पृथ्वी पर दाने डाल देता है। जब तोते दाने चुगने को आते हैं और नली पर दाने चुगने के लिए झुकते हैं तब नली घूम जाती हैं और वे उलटे लटक जाते हैं और बहेलिया आकर उन्हें पकड़ लेता है। इसी प्रकार बंदरों को पकड़ने के लिए तंग मुंह के चनों से भरे हुए घड़ों को पृथ्वी में गाड़ देते हैं। जब बंदर आकर घड़ों में अपने–अपने हाथ डालते हैं और चनों से मुट्ठी भर जाने से उनके हाथ घड़ों से बाहर नहीं निकलते हैं और बहेलिया आकर उन्हें पकड़ लेता है। जैसे तोता व बंदर अपने को जड़ से बंधा हुआ समझते हैं उसी प्रकार आत्मा भी समझता है कि जड़ माया ने मुझे बांधा हुआ है। वास्तव में, वह स्वयं जड़

माया को पकड़े हुए है। सुत वित, नारी आदि सांसारिक विषय अन्न के दाने हैं जिन के लोभ से वह संसार बंधन में फँया हुआ है।

वस्तुतः वैदिक सिद्वांत के अनुसार आत्मा, परमात्मा एवं प्रकृति तीन अनादि एवं स्वतंत्र सत्ताएं हैं। इसे ही त्रेतवाद के नाम से पुकारा जाता है। परन्तु कुछ विद्वानों ने आत्मा को परमात्मा का अंश इसलिए कह दिया क्योंकि दोनों ही अनादि एवं चेतन सत्ताएं हैं। आत्मा अल्पज्ञ है और परमात्मा सर्वज्ञ है। अतः वह परमात्मा का अंश न होकर एक स्वतंत्र अनादि सत्ता है।

9. **संत हृदय नवनीत[1] समाना।**
कहा कबिन्ह[2] परि[3] कहै न जाना।
निज परिताप द्रवइ नवनीता।
पर दुख द्रवहिं[4] सत सुपुनीता।।[5]

—उत्तराखण्ड 124(ख).4

गरुड़ जी काकभुशुण्डी जी से कहते हैं कि मोह रूपी सागर से उठते हुए आप मेरे लिये जहाज हैं। हे नाथ आपने मुझे अनेक सुख प्रदान किये हैं। परन्तु मैं इन सुखों का प्रत्युपकार नहीं कर सका। मैं आपके चरणों की बार—बार वंदना करता हूँ। आप पूर्णकाम हैं और आपके समान कोई बड़भागी नहीं है। संत, वृक्ष, नदी, पर्वत और पृथ्वी की सभी क्रियाएं परोपकार के लिए होती हैं। फिर गरुड जी काकभुशुण्डी को संतों की महानता पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं :—

संतों का हृदय मक्खन के समान कोमल होता है; ऐसा कवियों ने कहा है। परन्तु उन्होंने वास्तविकता को कहना नहीं जाना और इसलिए उन्होंने ठीक उपमा नहीं दी है। परन्तु इसके विपरीत परम पवित्र संत पराये दुःख को देखकर द्रवीभूत हो जाते हैं। कहने का भाव यह है कि मक्खन में कोमलता अपने लिये है, दूसरों के परिताप से मक्खन में कोई विकार उत्पन्न नहीं होता। अतः वह नहीं पिघलता। जब स्वयं अग्नि पर तपाया जाता है तभी पिघलता है। अपने दुःख से दुःखी होना तो दुष्टों में भी पाया जाता है। अतः उसकी प्रशंसा ही क्या?परन्तु परम पवित्र संत दूसरों का दुःख सह नहीं सकते और व्याकुल हो जाते हैं। जैसे आचार्य सुदर्शन जी लिखते हैं :—

संत दूसरों के ताप से पिघलता है वह करुणा से भर जाता है, इसलिए मुझे संत बड़े प्रिय लगते हैं।

—संगीतमय रामकथा पृ. 638

10. **कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभहि प्रिय जिमि दाम।**
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम।।

—130 (ख)

तुलसीदास जी श्रीराम के अनन्य भक्त थे। इसी विचार को व्यक्त करते हुए वे कहते हैं कि जैसे कामी पुरुष को नारी और लोभी को धन प्यारा होता है। वैसे ही मुझे श्रीराम जी आप सदा प्यारे लगते हों। यहाँ पर तुलसीदास ने राम भक्ति की पराकाष्ठा दिखाई है। जैसे कबीर जी लिखते हैं——

कामी का गुरु कामिनी, लोभी का गुरु दाम।
कबीर का गुरु संत है, संतन का गुरु राम।।

वस्तुतः तुलसीदास श्री राम के प्रति सम्पूर्णतः समर्पण थे और सदा सुख, शान्ति एवं आनन्द में रहते थे। यहाँ पर तुलसी ने श्रीराम की निष्काम भक्ति करने को कहा है।

18. गीता–प्रश्नोत्तरी

प्रश्न 1. गीता के लेखक कौन थे और यह किस ग्रंथ का भाग है?इसमें कितने श्लोक हैं और किस–किस पात्र ने कितने–कितने श्लोक बोले हैं?

उत्तर : श्रीमद्भगवद्गीता के लेखक महर्षि वेदव्यास थे और यह महाभारत के भीष्मपर्व का भाग है। इस पर्व के 25वें अध्याय से 42वें अध्याय तक जो 18 अध्याय हैं; उन्हें ही श्रीमद्भगवद्गीता के नाम से पुकारा जाता है। इसमें 700 श्लोक हैं और किस पात्र ने कितने श्लोक बोले हैं उनका विवरण निम्नलिखित हैं––

	पात्र	श्लोक
1.	धृतराष्ट्र	1
2.	संजय	41.5
3.	अर्जुन	83.5
4.	श्रीकृष्ण	574
	जोड़	700 श्लोक

प्रश्न 2. गीता में श्रीकृष्ण द्वारा प्रयुक्त ''मैं'', ''मेरा'', ''मुझे'' आदि सर्वनामों के क्या अर्थ हैं?

उत्तर :– गीता में श्रीकृष्ण ने लगभग 300 बार ''मैं'', ''मेरा'', ''मुझे'' आदि सर्वनामों का प्रयोग योगयुक्त अवस्था में अपने लिये न करके परमात्मतत्व का वर्णन किया है। इसका यह अर्थ नहीं कि वे स्वयं परमात्मा थे या परमात्मा के अवतार थे जैसे वैष्णव भाई मानते हैं परन्तु वे महापुरुष थे। जैसे गुरुदत्त लिखते हैं–

> **वहाँ कृष्ण ने कहा है कि गीता का प्रवचन मैंने योगयुक्त अवस्था में किया था। उस समय मैं ऐसे कह रहा था जैसे मानो परमात्मा मुझ में बैठकर कह रहा हो। इस प्रकार जहाँ–जहाँ कृष्ण ने मैं, मेरा, इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया**

है, वहाँ उसका अभिप्राय परमात्मा का ही है। अतः मेरे परायण का अर्थ ईश्वर के परायण समझना चाहिए।

—श्रीमद्भगवद्गीता पृ. 56

प्रश्न 3. क्या गीता में कर्मयोग है या भक्तियोग है या ज्ञानयोग है? अथवा यह एक समन्वयात्मक ग्रंथ है?

उत्तर :— गीता में कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग का सुन्दर समन्वय हुआ है। पहले 6 अध्यायों में कर्मयोग का प्रधान्य है, दूसरे 6 अध्यायों में ज्ञानयोग का प्रधान्य है, तीसरे 6 अध्यायों में भक्तियोग का प्रधान्य है। मानव जीवन की यात्रा के लिये तीनों का समन्वय आवश्यक है। अतः गीता एक समन्वयात्मक ग्रंथ है। गीता में कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग के क्या अर्थ हैं?कर्मयोग का अर्थ है—शरीर को संसार की निष्कामसेवा में समर्पित करना। ज्ञानयोग का अर्थ है—आत्मा में स्वयं को समर्पित कर देना और भक्तियोग का अर्थ है स्वयं को मन से परमात्मा में। इन तीनों के पूर्ण हो जाने पर अभिमान का नाश हो जाता है। क्योंकि अहंकार का गिरना ही आत्मसाक्षात्कार है। इसके विषय में डॉ नरेन्द्र मदान लिखते हैं :—

गीता में कर्म, भक्ति और ज्ञान की अलौकिक त्रिवेणी लहरा रही है। इसके पद—पद में अलौकिक अर्थ है, अनन्यभाव से इसका अध्ययन करने से मन के कपाट खुलते हैं।

इसी प्रकार योगऋषि स्वामी रामदेव जी लिखते हैं:—

गीता में ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, दिव्ययोग चारों ही हैं।

—श्रीमद्भगवद्गीतागीतामृत (पृ. 22)

अतः जगद्गुरु कृपालु जी महाराज लिखते हैं :—

कर्म, ज्ञान अरु योग को, जो भी फल श्रुति गाये।
अनायास बिनु मांगे, भगत सफल फल पाये। —भक्ति शतक (दोहा नं. 64)

कर्म, ज्ञान एवं योग का जो भी फल शास्त्रों में बताया है वह सब बिना मांगे ही भक्ति से प्राप्त हो जाता है।

वस्तुतः कर्म के बिना ज्ञान असम्भव है विना ज्ञान के भक्ति अधूरी है और विना भक्ति के ज्ञान लंगड़ा है। ये तीनों एक–दूसरे के पूरक हैं। अतः जीवन में सफलता की प्राप्ति के लिए तीनों का सुन्दर समन्वय आवश्यक है। परन्तु कर्म स्थूल अहंकार है और ज्ञान सूक्ष्म अहंकार है और भक्ति निहंकार है। वस्तुतः कर्म की अनाशक्ति से, ज्ञान की ममता से, भक्ति की समर्पण से, इच्छा की व्याकुलता से, श्रद्धा की सेवा से, शक्ति की परिश्रम से, तप की त्याग से और दान की उदारता से परख होती है। अतः प्रभु–अनुभूति केवल अनन्य भक्ति से ही होती है।

प्रश्न 4. वह कौनसा वेदमंत्र है जिस पर सारी गीता आधारित है?

उत्तर :– यजुर्वेद के 40वें अध्याय का दूसरा अथवा ईशावस्यो– पनिषद् के निम्नलिखित मंत्र पर सारी गीता आधारित है :–

ओ३म् कुर्वन्नेवेह कर्माणि, जिजीविषेच्छतँ्समाः।
एवं त्वयि नान्यथेताऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

इस संसार में निष्काम कर्मों को करते हुए मनुष्य सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करें। यही एक साधन है जिसके द्वारा तुम मनुष्य कर्म में लिप्त न होंगे। इसके अतिरिक्त कोई भी उपाय नहीं है।

प्रश्न 5. गीता का अपना ही घड़ा हुआ शब्द कौन सा है और उस शब्द का अर्थ विस्तार से बताइए।

उत्तर :– कर्मयोग (निष्काम कर्म) शब्द गीता का अपना घड़ा हुआ शब्द है। मनुष्य की वृत्तियां त्रिगुणात्मक होती हैं। उसके आधार पर उसका चिन्तन भी निम्नलिखित तीन प्रकार का होता है :–

(क) तमोगुणी मनुष्य का चिन्तन होगा कि फल मिलेगा तो कर्म करूँगा। यदि फल नहीं मिलेगा तो कर्म ही नहीं करूँगा।

(ख) रजोगुणी मनुष्य का चिन्तन होगा कि कर्म तो करूँगा किन्तु इसका फल अवश्य मिलना चाहिये जोकि उसके हाथ में नहीं है।

(ग) सतोगुणी मनुष्य का विचार होता है कि कर्म करूँगा परन्तु फल परमेश्वर की न्यायव्यवस्था के अनुसार जो भी मिलेगा वह उसे स्वीकार करेगा यही कर्मयोग है। इसके विषय में स्वामी विवेकान्नद लिखते हैं–

गीता का केन्द्रीय भाव है कि निरंतर कर्म करते रहो, परन्तु उसमें असक्त मत रहो।

जगद्गुरु श्री कृपालु जी महाराज लिखते हैं :–

मन में हरि, तन जगत् में, कर्मयोग तेहि जान।
तन हरि में मन जगत् में, यह महान् अज्ञान।।

–भक्ति शतक (दोहा 84)

योगऋषि रामदेव भी लिखते हैं–

कर्मयोग गीता का अपना ही घड़ा हुआ शब्द है। विश्व के चिन्तन को गीता की यह अपनी देन है। कर्मयोग की इसी देन के कारण गीता आज भी विश्व को वैसा ही नवीन संदेश दे रही है जैसा नवीन संदेश इससे कुरुक्षेत्र की रणभूमि में हथियार फेंक कर निराश खड़े हुए अर्जुन को दिया था।

–श्रीमद्भगवद्गीता गीतामृत (पृ. 76)

कर्मयोग का अर्थ कर्म का त्याग नहीं अपितु कर्त्तापन के अहंकार से मुक्त होकर भगवान् के प्रति पूर्ण समर्पण भाव से कर्म को भगवान् की पूजा मानकर व स्वयं को निमित्त मात्र मानकर कार्य करना ही कर्मयोग है।

–जीवन दर्शन (पृ. 65)

प्रश्न 6. गीता में भक्ति, ज्ञान और कर्म शब्दों में क्या–क्या रहस्य छिपा है?

उत्तर :– कर्म – अहंकार = भक्ति।
कर्म + अहंकार = ज्ञान।
ज्ञान + भक्ति = कर्म।

अतः चाहे व्यक्ति कर्म करने में स्वतंत्र है परन्तु उसे इस स्वतंत्रता में भी परमेश्वर की न्यायव्यवस्था रूपी परतंत्रता निहित है। अभिमान एवं

मोहमाया की भावना से ग्रस्त मानव सदा अनेक प्रकार की चिन्ताओं में पड़ा रहता है।

प्रश्न 7. गीता में कितने प्रकार के भक्तों का वर्णन है और कौन से भक्त को सर्वश्रेष्ठ भक्त माना गया है?

उत्तर :– गीता में निम्नलिखित चार प्रकार के भक्तों का वर्णन है–

(क) आर्त्तभक्त :– जो किसी दुःख के कारण परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

(ख) अर्थाथीभक्त :– जो धन एवं किसी स्वार्थपूति के लिए परमात्मा की प्रार्थना करते हैं।

(ग) जिज्ञासु भक्त :– जो केवल ज्ञान प्राप्ति के लिए परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

(घ) ज्ञानी भक्त :– केवल ज्ञानी भक्त ही प्रभु से निःस्वार्थ भाव से प्रार्थना करते हैं। क्योंकि उनकी कोई मांग नहीं होती है। अतः वे ही प्रभु के सर्वश्रेष्ठ भक्त हैं।

प्रश्न 8. देवी सम्पदा एवं आसुरी सम्पदा में कौन–कौन से गुण एवं दोष आते हैं?

उत्तर :– देवी सम्पदा के गुण हैं – निडरता, मनकी शुद्धता, दान देने की प्रवृत्ति, तप, त्याग आदि।

आसुरी सम्पदा के दोष हैं – पाखंड, क्रोध, कठोरता, अभिमान आदि।

प्रश्न 9. गीता का श्रीगणेश एवं इति इन–इन शब्दों से हुई हैं और इसका क्या सार है?

उत्तर :– गीता का श्रीगणेश ''धर्म'' और इति ''मम'' शब्दों से हुआ है। इस का सार है कि मेरा क्या धर्म है। जैसे :–

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय।। 1.6

कुरुक्षेत्र की धर्मभूमि पे जब,
मिले पाण्डवों से मेरे लाल सब।
लड़ाई का दिल में जमाये ख़्याल,
तो संजय बता उनका सब हाल–चाल।।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।। 18.78
जिधर है कृष्ण मेहरबाँ, योगेश्वर हैं खुद जहाँ,
जिधर है साहिब–ए–कमाँ, वो अर्जुन जैसा पहलवाँ।
वहीं हैं शादकामियाँ वहीं है खुश इन्तज़मियाँ
वहीं है कामरानियँ, वहीं हैं शदमानियाँ।।

प्रश्न 10. गीता का सार क्या है?

उत्तर :– वेदों का सार उपनिषदें हैं। उपनिषदों का सार गीता है। गीता का सार के 18 अध्याय का 66वां श्लोक है और इस श्लोक का सार शरणागति है। इसका भाव यह है कि तू सब धर्मों को छोड़कर मेरी तरह परमात्मा की शरण में आ जा। तू दुःखी मत हो। जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों :–

जाने क्या जादू भरा हुआ,
भगवान् तुम्हारी गीता में,
श्रीकृष्ण तुम्हारी गीता में,
भगवान् तुम्हारी गीता में,
मन चमन हमारा हरा हुआ,
श्रीकृष्ण तुम्हारी गीता में,
जब शोक मोह से घिर जाए,
तब गीता वचन हृदय गावे,
युग–युग का अनुभव जुग–जुग–
भगवान् तुम्हारी गीता में,
गीता संतों की प्यारी है,
श्रुति वेदों के अनुसारी है,
सारा भवसागर तरा हुआ,
श्रीकृष्ण तुम्हारी गीता में,
अर्जुन को जब भव मोह हुआ,
तब गीता ज्ञान सुना डाला,
उपनिषद् का रस भरा हुआ,
श्रीकृष्ण तुम्हारी गीता में।

गीता के 10 अत्यन्त महत्वपूर्ण श्लोकों की व्याख्या

1. **वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।**
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयााति नवानि देही।। –2.22

बदलता है इसाँ लिबास–ए–कुहन,
नया जामा करता है फिर ज़ेब–ए–तन।
इसी तरह कालिब बदलती है रूह,
नये भेस में निकलती है रूह।।

जैसे व्यक्ति पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को धारण करता है वैसे ही आत्मा पुराने शरीर का त्याग कर नया शरीर धारण करती है। क्योंकि शरीर क्षणभंगुर एवं नश्वर है। जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों में :–

निर्भय स्वागत करो मृत्यु का,
मृत्यु एक विश्राम स्थल।
जीव जहाँ से फिर चलता है,
धारण कर नव जीवन संबल।।

2. **नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।**
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।। –2.23

कटेगी न तलवार से आत्मा,
जलेगी कहाँ आग से आत्मा।
न गीली हो पानी लगाने से यह,
न सूखे हवा में सुखाने से यह।।

इस आत्म को शस्त्र काट नहीं सकते, आग जला नहीं सकती, जल गीला नहीं कर सकता एवं वायु सुखा नहीं सकती क्योंकि यह आत्मा अजर, अमर और शाश्वत है। इसके विषय में स्वामी गीतानंद (वीर जी) ने कितना सुन्दर लिखा है :–

अमर है आत्मा मेरी, क़ज़ा से मैं नहीं डरता।
मेरे आमाल अच्छे हैं ख़ुदा से मैं नहीं डरता।।

3. **जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।**
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।। 2.27

जो पैदा हो मौत उसको आये ज़रूर,
मरे जो जन्म फिर वो पाये ज़रूर।
जो यह अमर लाज़म है ओर नागज़ीर,
तो फिर किस लिये जू ग़म का आसीर।।

जिस प्राणी का जन्म हुआ है उसकी मृत्यु अनिवार्य है और मृतक का पुनः जन्म भी निश्चित् है। यदि प्रकृति का यह अटल एवं अनिवार्य नियम हैं तो अर्जुन तुझे शोक करना उचित नहीं है। (प्रत्येक जीवित प्राणी की मृत्यु तो निश्चित् है परन्तु मृत का जन्म निश्चित् नहीं है क्योंकि मृत्यु के पश्चात् उसे मोक्ष ही मिल सकता है।

4. **कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।**
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।। 2.47

तुझे काम करना है ओ मरदेकार,
नहीं उसके फल पर तुझे इख़्तिार।
किये जा अमल और न ढूँढ उसका फल,
अमल कर, अमल कर न हो बे–अमल।।

प्रत्येक व्यक्ति का केवल कर्म करने का अधिकार है, परन्तु उसके कर्मफल में उसका कोई भी अधिकार नहीं है। कर्मफल परमात्मा के हाथ में है। अतः व्यक्ति को कर्मफल का हेतु नहीं बनना चाहिए। अपितु कर्त्तव्य कर्मों का अनुपालन मोहममता, आसक्ति और इच्छाओं का परित्याग करके ही करना चाहिए ताकि कर्म की कार्यकुशलता बढ़े। व्यक्ति को कर्म न करने में भी आसक्ति न हो। अतः श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए समझाते हैं कि तुम निष्काम मन से स्वधर्म क्रिया का धारण करो।

5. **विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरित निःस्पृहः।**
निर्ममो निरहंकारः स शांतिमधिगच्छति।। 2.71

जो इन्साँ करे ख़्वाइशें दिल से दूर,
हवस का न हो जिसके दिल में फ़तूर।

न उसमें ख़ुदी हो न हो मेर–तेर,
सकूँ उसको हासिल है दिल उसका सेर।।

जो व्यक्ति सारी इच्छाओं को त्यागकर ममतारहित, अहंकाररहित और कामनारहित इस संसार में विचरता है उसी को शांति मिलती हैं वह व्यक्ति सच्चा स्थितप्रज्ञ है। क्योंकि सारे दुःखों का मूल कारण इच्छाएँ हैं। यहाँ तक कि विभिन्न विकारों काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या–द्वेष का उद्गम भी कामनाओं से होता हैं जैसे जयशंकर प्रसाद जी ने अपने विश्वविख्यात महाकाव्य 'कामायनी' में लिखा है–

कर्म चक्र सा घूम रहा है,
यह गोपक बन नियति प्रेरणा।
सबके पीछे लगी हुई है,
कोई व्याकुल नई एषणा।।

6. **ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्ग त्यक्त्वा करोति यः,।**
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा।। 5.10

रहे बे–तअल्लुक करे जब अमल,
ख़ुदा ही की खातिर करे सब अमल।
ख़ता से हमेशा रहेगा बरी,
कमल के न पत्ते पर ठहरे तरी।।

जो व्यक्ति सब कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके और आसक्ति को त्यागकर कर्म करता है, वह व्यक्ति जल में कमल के पत्ते की भाँति पाप से लिप्त नहीं होता। कहने का तात्पर्य यह है कि संसार के सब पदार्थों को त्यागमय भाव से भोगों परन्तु इनसे चिपटो मत।

7. **गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्।।**
जन्ममृत्युजरादुःखैविर्मुक्तोऽमृतमश्नुते।। 14.20

बदन का है तीनों गुणों पर मदार,
मकीन–ए–बदन गर करे उनको पार।
वो चखता है अमृत वो पाता है सुख,
न जीना, न मरना, न पीरी न दुःख।।

शरीर से उत्पन्न होने वाले इन तीनों गुणों सत्व, रज और तम को पार करके, आत्मा, जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा और दुःखों से मुक्त होकर, परमानंद की प्राप्ति करता है। अतः अत्यंत श्रेष्ठ आत्मबोध से युक्त जो शरीर में निवास करता है। उसे ही गुणातीत के नाम से पुकारा जाता है।

8. **मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।**
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते।। 14.25

न जिल्लत की परवाह न इज़्ज़त की भूख,
करे दोस्त दुश्मन से यकसाँ सलूक।
ग़रज़ त्यागे मुझ पे सब कारोबार,
समझ लो गुणों से होता है पार।।

जो पुरुष मान व अपमान में समान रहता है। मित्र एवं शत्रु को भी समान समझता है और जिसने सब सकाम कर्मों का परित्याग कर दिया है वही वस्तुतः गुणातीत है। वह न तो सुख से सुखी और न ही दुःख से दुःखी होता है। उसका मन पत्थर के समान होता है और वह सब प्रकार के संकल्प–विकल्प छोड़ देता है।

9. **मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।**
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।। 18.65

लगा मुझ में दिल भक्त हो जा मेरा,
तू कर यज्ञ मेरे सामने सर झुका।
मुझे तुझ से मुझसे तुझे प्यार है,
मेरा वस्ल का तुम से इक़रार है।।

हे अर्जुन! तू मुझ में मन लगा, मेरा भक्त बन जा, मेरा पूजन कर मुझको प्रणाम कर। ऐसा करने से तू मुझे प्राप्त होगा। यह मैं तुझ से सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ क्योंकि तू मेरा अत्यंत प्रिय भक्त है।

10. **सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।**
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। 18.66

तू सब अधर्म छोड़ और ले मेरी राह,
तू माँग आ के दामन में मेरे पनाह।

तेरे पाप सब दूर कर दूँगा मैं,
न ग़मगीं हो मसरूर कर दूँगा मैं।।

सारे अधर्मों का परित्याग करके तू मेरी तरह प्रभुशरण में आ जा। मैं तुझको पापों से मुक्त कर दूँगा। तू शोक न कर। प्रभु की चरण एवं शरण से ही सुख, शांति और आनंद तो मिलता हैं परन्तु किये हुए कर्मों को अवश्य भोगना पड़ता है। जैसे जो कोई भी व्यक्ति कर्म करता है उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है क्योंकि कर्मफल के भोगे बिना उससे छुटकारा नहीं। प्रत्येक व्यक्ति कर्म करने में पूर्ण स्वतंत्र है परन्तु उसके फल भागने में ईश्वरीय व्यवस्था के अनुसार परतंत्र है। जैसे महर्षि वेद व्यास महाभारत में लिखते हैं :–

अवश्यमेव भोक्तव्यम् कृतम् कर्म शुभाशुभम्।

जो भी किसी भी व्यक्ति ने शुभ अथवा अशुभ कर्म किये हैं उनका फल उसे अवश्यक ही भोगना पड़ेगा।

अतः प्रभुशरण से पापों से कभी भी मुक्ति नहीं हो सकती है। परन्तु किये हुये पापों पर पश्चाताप करने से पापों के सहन करने की शक्ति बढ़ जाती हैं अतः मानव को सारे कर्मफल प्रभु पर छोड़ देना चाहिए और सदा उसकी चरणशरण ही रहना चाहिए। यही गीता का सार हे।

19. सत्यार्थप्रकाश–प्रश्नोत्तरी

प्रश्न 1. सत्यार्थप्रकाश लिखने की प्रेरणा महर्षि दयानंद को किस व्यक्ति से मिली और उन्होंने इसे किस व्यक्ति से लिखवाया?

उत्तर :– ''सत्यार्थप्रकाश'' लिखने की प्रेरणा महर्षि दयानन्द को राजा जयकृष्णदास जी से मिली जोकि उस समय बनारस के कॉलेटर थे और पं चन्द्रशेखर जी को भी राजाकृष्णदास जी से सत्यार्थप्रकाश लिखवाने के लिए नियुक्त किया था जोकि महाराष्ट्र के रहने वाले थे और जयकृष्णदास के कार्यालय में एक लिपिक के रूप में काम करते थे।

प्रश्न 2. महर्षि दयानंद को सत्यार्थप्रकाश लिखने के लिये कितने ग्रंथों का अध्ययन करना पड़ा था?

उत्तर :– 2986 ग्रंथ।

प्रश्न 3. महर्षि दयानंद ने कितने समय में सत्यार्थप्रकाश को लिखा था?

उत्तर : महर्षि दयानंद ने 12.6.1874 दिन शुक्रवार को ''सत्यार्थप्रकाश'' लिखवाना आरंभ किया था और लगभग 3 मास में इसे लिख डाला। महर्षि दयानंद ने इसे बनारस में लिखवाना आरंभ किया और इसका अधिकतर भाग उदयपुर में लिखवाया गया। पहले इस में 12 समुल्लास छपे थे क्योंकि राजा जयकृष्णदास जी ने 13वां व 14वां समुल्लासों को अंग्रेज़ों के डर से नहीं छपवाया था क्योंकि वे सरकारी कर्मचारी थे। इसके बाद ऋषि ने उदयपुर में बैठकर इसका संशोधन किया और यह महर्षि दयानंद की मृत्यु के पश्चात् 1884 ई. में छप सका।

प्रश्न 4. सत्यार्थप्रकाश में कितने समुल्लास हैं और इसके कितने भाग हैं।

उत्तर :– सत्यार्थप्रकाश में 14 समुल्लास हैं और इसके दो भाग है–एक पूर्वार्द्ध और दूसरा उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्ध में 10 समुल्लास हैं जिनमें वैदिक सिद्धान्तों का मंडन किया गया है और उत्तरार्द्ध में 4 समुल्लास है जिनमें वेद

विरुद्ध बातों का खंडन किया गया है।

प्रश्न 5. सत्यार्थप्रकाश में सब से छोटा और सब से बड़ा कौन सा समुल्लास है?

उत्तर :– दूसरा और ग्यारहवाँ समुल्लास।

दूसरे समुल्लास में संतानों की शिक्षा का वर्णन है और यह भी बताया गया है कि माता–पिता एवं आचार्य ज्ञानवान एवं धार्मिक हो। केवल गणित ज्योतिष वैज्ञानिक है और न कि फलित ज्योतिष। 11वें समुल्लास में बतलाया गया है कि महाभारत काल के उपरांत जो भी विभिन्न पंथ इस देश में चले उनके पाखंडों का खंडन इसमें किया गया है जैसे वाममार्ग से अश्लील समारोहों में मूर्तिपूजा आदि का खंडन किया गया हैं मूर्तिपूजा के स्थान पर पंचायतन पूजा–माता–पिता, आचार्य, अतिथि, पति के लिये पत्नी और पत्नी के लिये पति पूजनीय हैं।

प्रश्न 6. सत्यार्थप्रकाश में विभिन्न ग्रंथों के कितने प्रमाण उद्धृत किये गये हैं?

उत्तर :– सत्यार्थप्रकाश में 290 ग्रंथों के 1886 प्रमाण उद्धृत किये गये हैं।

प्रश्न 7. सत्यार्थप्रकाश में विभिन्न ग्रंथों के कितने मंत्र एवं श्लोक उद्धृत किये गये हैं?

उत्तर :– 1542 मंत्र एवं श्लोक।

प्रश्न 8. सत्यार्थप्रकाश के किस समुल्लास पर कई बार प्रतिबंध लगे?

उत्तर :– सत्यार्थप्रकाश के चौदहवें समुल्लास पर कई बार प्रतिबंध लगे थे जिसमें कुरान के 161 उद्धरणों को लेकर पाखण्डों का खंडन किया गया है। परन्तु आंदोलनों के बाद ये प्रतिबंध हटा दिये गये थे।

प्रश्न 9. महर्षि दयानंद जी का सत्यार्थप्रकाश लिखने का क्या मुख्योद्देश्य था?

उत्तर :– महर्षि दयानंद जी का सत्यार्थप्रकाश लिखने का मुख्योद्देश्य सत्य का प्रकाश करके अंधकार रूपी पाखण्डों को जीवन से भगाना था क्योंकि वे एक महान् समाज सुधारक थे। अतः वे स्वयं सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में

लिखते हैं :–

मेरा इस ग्रंथ को बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य का प्रकाश करना है।

इसी कारण यह ग्रंथ 19वीं शताबदी का सर्वप्रिय ग्रंथ बन गया था।

प्रश्न 10. सत्यार्थप्रकाश का क्या महत्व है?

उत्तर :– इस ग्रंथ के स्वाध्याय मात्र से संसार के प्रायः सभी मुख्य–मुख्य मतों एवं उनके सिद्धान्तों का परिचयात्मक ज्ञान हो जाता है। तभी डॉ. भवानी लाल भारतीय इसको **''विश्वकोष''** के नाम से पुकारते हैं। इसी लिये एक हिन्दी कवि ने इसकी महत्ता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है :–

दुनियाँ सारी घूम ली कहीं पाया नहीं प्रकाश।
दूर अंधेरा हुआ जब, पढ़ा सत्यार्थप्रकाश।।
सत्य तो यह है वेद का सार है सत्यार्थप्रकाश।।
कर रहा सत्य का विस्तार सत्यार्थप्रकाश।।
रोकता है झूठ का प्रचार सत्यार्थप्रकाश।।

अब प्रश्न उठता है कि सत्यार्थप्रकाश क्यों पढ़ें ?

1. ईश्वर के सच्चे स्वरूप को जानने के लिए।
2. सन्तानों को सुशिक्षित करने के लिए।
3. अन्धविश्वास और पाखण्डों को चुनौती देने के लिए।
4. वैदिक धर्म की पुनः स्थापना के लिए।
5. गुणकर्मानुसार वर्ण व्यवस्था की स्थापना के लिए।
6. गृहस्थाश्रम के नियमों को समझने के लिए।
7. आश्रम व्यवस्था को जानने के लिए।
8. राजधर्म को जानने के लिए।
9. ईश्वर, जीव और प्रकृति के भेद को समझने के लिए।
10. जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय को समझने के लिए।
11. बन्धन और मोक्ष के विषय को जानने के लिए।
12. धर्म के सत्य स्वरूप को जानने के लिए।

13. भारतवर्ष में फैले मत–मतान्तरों में सत्य असत्य का निर्णय करने के लिए।
14. भारतीय संस्कृति को समढने के लिए।
15. युवकों में बढ़ती हुई नास्तिकता को रोकने के लिए।
16. धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक क्रान्ति के लिए।
17. विश्व में एक ही मानव धर्म को विस्तृत करने के लिए।
18. वैचारिक क्रान्ति के लिए।
19. मानव जीवन के उद्देश्य को जानने के लिए।
20. संसार के विभिन्न सम्प्रदायों की वास्तविकता को जानने के लिए।

सत्यार्थप्रकाश के 10 अत्यंत महत्त्वपूर्ण उद्धरण

पहला समुल्लास

1. ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है।

चौथा समुल्लास

2. जो अपनी ही स्त्री से प्रसन्न और ऋतुगामी होता है वह गृहस्थ भी ब्रह्मचारी के सदृश है।

साँतवां समुल्लास

3. ईश्वर अपने काम अर्थात् उत्पत्ति, पालन, प्रलय आदि और सब जीवों के पुण्य–पाप की यथायोग्य व्यवस्था करने में किंचित् भी सहायता नहीं लेता।

4. प्रश्न : जीव स्वतंत्र है वा परतंत्र?

उत्तर :– अपने कर्त्तव्य कर्मों में स्वतंत्र और ईश्वर की व्यवस्था में परतंत्र है। ''स्वतंत्र कर्त्ता'' यह पाणिनीय व्याकरण का सूत्र है। जो स्वतंत्र अर्थात् स्वाधीन है वही कर्त्ता है।

ग्यारहवाँ समुल्लास

5. यह आर्य्यावर्त्त देश ऐसा है जिके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है। इसी लिये इस भूमि का नाम स्वर्णभूमि है क्योंकि यही स्वर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है।

स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः

6. अनादि पदार्थ तीन हैं। एक ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरा प्रकृति अर्थात् जगत् का कारण, इन्हीं को नित्य भी कहते हैं। जो नित्य पदार्थ हैं उसके गुण, कर्म स्वभाव भी नित्य हैं।

7. 'तीर्थ' जिससे दुःखसागर से पार उतरें कि जो सत्यभाषण विद्या, सत्संग, यमादि योगाभ्यास पुरुषार्थ विद्यादानादि शुभकर्म हैं उसी को

तीर्थ समझता हूँ, इतर जलस्थलादि को नहीं।

8. 'संस्कार' उसको कहते हैं कि जिससे शरीर, मन और आत्मा उत्तम होवे। वह निषाकादि श्मशानन्त सोलह प्रकार का है। इसको कर्त्तव्य समझता हूँ और दाह के पश्चात् मृतक के लिये कुछ भी न करना चाहिये।

9. 'प्रार्थना' अपने सामर्थ्य के उपरांत ईश्वर के संबंध से जो विज्ञान आदि प्राप्त होते हैं उनके लिये ईश्वर से याचना करना और इसका फल निरभिमान आदि होता है।

10. 'उपासना' जैसे ईश्वर के गुण कर्म, स्वभाव पवित्र हैं वैसे अपने करना, ईश्वर को सर्वव्यापक और अपने को व्याप्य जान के ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है ऐसा निश्चय योगाभ्यास से साक्षात् करना उपासना कहलाती है, इसका फल ज्ञान की उन्नति आदि है।

लेखक द्वारा प्रकाशित एवं निःशुल्क वितरित पुस्तकों की सूची :—

1. रामचरितमानससार
2. गीतासार
3. उपनिषद्सार
4. सत्यार्थप्रकाशसार
5. भक्ति
6. सुखीजीवन
7. आत्मबोध
8. वेदवाणी
9. वैदिकसाहित्य
10. अमृतवाणी
11. महर्षि दयानंद
12. स्वामी विवेकानंद
13. शरणागति
14. वैदिक रामायण
15. क्या आप जानते हैं ?
16. शेंर-ओ-शायरी

लेखक द्वारा अप्रकाशित पुस्तकों की सूची :–

1. वैदिक उपनिषद्वाणी
2. वैदिक दर्शनवाणी
3. वैदिक महाभारत
4. वैदिक गीता
5. अमर धर्मग्रंथ
6. अमर नीतिग्रंथ
7. पुराणपरिचय
8. ईश्वरसिद्धि
9. राष्ट्रभाषा हिन्दी
10. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
11. महावीर हनुमान
12. योगिराज श्रीकृष्ण
13. आदिशंकराचार्य
14. आचार्य चाणक्य
15. दस गुरु
16. आर्यसमाज के महामानव
17. स्वामी रामतीर्थ
18. संस्कार
19. गीतांजलि
20. आर्यसमाज
21. ओ३म्
22. गायत्रीरहस्य
23. ज्ञानामृत
24. यज्ञ
25. संत
26. संतवाणी
27. सामान्य हिन्दी (भाग I-II)
(सब कक्षाओं के लिये)
28. **Great Thoughts**
29. **General English (Part I to V)**
(For All Classes)